CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नं ।
V

नागरी प्रचारिणी
पत्रिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अर्थात्

प्राचीन शोधसंबंधी त्रैमासिक पत्रिका

[नवीन संस्करण]

भाग १६—अंक ३

संपादक

श्यामसुंदरदास

—:※:—

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

कार्तिक संवत् १९९२] [मूल्य प्रति संख्या २॥) रुपया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ

१०—चंदेल राजा परमाल (परमार्दिदेव) के समय का एक जैन शिलालेख [लेखक—श्री हीरालाल जैन, एम० ए०, एल्-एल० बी०, अमरावती] २७३

११—महामहोपाध्याय महाकवि श्री शंकरलाल शास्त्री की जीवनी तथा उनके ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय [लेखक—श्री शिवदत्त शर्मा, देहली] २७६

१२—गर्भ श्रीमान् अथवा केरल के एक हिंदी कवि [लेखक—श्री वेंकटेश्वर, मद्रास] ३१६

१३—"साइको-ऐनेलेसिस" [लेखक—श्री केशवदेव शर्म्मा, मथुरा] ३५५

१४—त्रिगर्त (डुगर) देश के कवि [लेखक—ठाकुर कांतसिंह बिलौरिया, जम्मू] (असमाप्त) ३७७

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा की प्रकाशित पुस्तकें

मनोरंजन-पुस्तकमाला

आदर्श जीवन ... १।) जर्मनी का विकास भाग १-२ २॥)
आत्मोद्धार ... १।) कृषि-कौमुदी ... १।)
गुरु गोविंदसिंह ... १।) कर्तव्यशास्त्र ... १।
आदर्श हिंदू भ
राणा जंगबहा
भीष्म पितामह
लालचीन
कबीर-वचनावल
महादेव गोविंद
मितव्यय
वीरमणि
नेपोलियन बोना
शासन-पद्धति
महर्षि सुकरात
ज्योतिविनोद
आत्म-शिक्षण
सुंदर-सार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो जाते थे और तक्षशिला में कर भेज देने के अतिरिक्त स्वतंत्र थे। मथुरा के क्षत्रपों के पाँच नाम मिलते हैं। विदित होता है कि शालिवाहन को तक्षशिला पर धावा करने के पहले मथुरा के क्षत्रपों को उच्छिन्न करना पड़ा होगा।

१	क्षत्रप	हगमाष
२	,,	रांजुबुल
३	,,	युवराज खरोष्टा (Lion capital inscription)
४	,,	सोदास
	महाक्षत्रप	सोदास
५	,,	मेव-कि (Muttra inscription)

पाँचवें महाक्षत्रप मेव-कि के बाद कोई नाम नहीं मिलता। इससे विदित होता है कि शालिवाहन ने सिंधु के किनारे शक सम्राट् रासल पर विजय पाने के पहले महाक्षत्रप मेव-कि पर विजय पाई।

नवागंतुक शक-दल भारत के इतिहास में कुषाण के नाम से प्रसिद्ध है। कुषाणों में मौर्य अशोक के समान प्रतापी कनिष्क जैसे प्रख्यात सम्राट् हो गए हैं। कुषाण शक तो थे ही किंतु देश में शक (म्लेच्छ) शब्द से घृणा होने से कनिष्क ने अपने को शक नहीं लिखा। कुषाणों के पहले आनेवाले शक नहपान आदि चहरत-वंश में थे। कुषाण और चहरत एक ही वंश के तो नहीं थे लेकिन शक अवश्य थे। डा० कोनो आदि धुरंधर विद्वानों का मत है कि कुषाण भी (शाकनः) शक थे। कुषाण नाम से विख्यात होने का यह कारण था कि इस नए दल के अधिपति का नाम ही कुषाण था; इसी से कुषाण-वंश के कनिष्क आदि नरेशों ने, शक शब्द बदनाम होने से, अपने को कुषाण प्रसिद्ध किया। खरोष्ट्री शिलालेखों

२२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से सिद्ध होता है कि कुषाण जाति का नाम नहीं है। कुषाण के वंशजों ने अपने शिलालेखों में पिता का नाम साफ लिख दिया है और विरुद के लिये शाही, कैसर तथा देवपुत्र शब्दों का प्रयोग किया है।

अंक		
१२२	महाराजस गुशानस राजा (मि०) Panjtar inscription Kharoshtri I. 670	
१३६	महाराजस, राजातिराजस, देवपुत्रस, कुशानस आरोग दच्छिनाय	Taxila scroll reals
१८४	महाराजो, राजातिराजो, देवपुत्रो, कुषाणपुत्रो शाही 'वेम' कावथिस (P.S.Khalats)	
	महाराजस्य देवपुत्रस्य हुविष्कस्य (£ 41)	
	महाराजस्य राजातिराजा (देवपुत्रस शाही वासहकस्य (Sanchi £ 61)	
	महाराजस, राजातिराजस, देवपुत्रस, कैसरस, वाझेष्क-पुत्रस, कनिष्कस (Year 41 era)	

उपर्युक्त शिलालेखों में कुषाण शब्द जाति के लिये कहीं नहीं आया। मथुरा में कुषाणपुत्र "वेम" देवकुल निर्माण करानेवाले महादंडनायक वरकनपति चहरत शाखा के शक थे। (हुना चत्रपेन कारिता) और इसी मथुरा के देवकुल में कुषाण कनिष्क आदि के साथ "चहरत" चष्टन की मूर्ति मिलने से दोनों नए और पुराने वंश एक ही शाखा के सिद्ध होते हैं। मजम्मुल उ-त्तवारीख में जिस कफंद का नाम आया है वह कफंद और कुषाण एक ही पुरुष का नाम है। डा० कोनो ने कुषाणों की खरोष्ट्री अक्षरवाली मुद्रा और शिलालेखों को पढ़ा है। दुरारोह पर्वतों को पार कर लद्दाख का कठिन शिलालेख भी डा० कोनो ने बड़े परिश्रम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से पढ़ा है। इन लेखों में पहले राजा का नाम "कुषाण कफस" और दूसरा नाम वीम लिखा है—

कुजुल कफस (Kadphis)
कुषाण कुजुल कफस
कुजुल कर कफस

महाराजा उवीम कावथिस

लद्दाख शिलालेख में अंकित पहला नाम कुजुल कफस और मजम्मुल का कफंद एक ही व्यक्ति है। कफंद ने हालसातकर्णि से मिलकर पार्थियन महरमजीद को सिंध से मार भगाया। इससे ज्ञात होता है कि हालकर्णि (समय १७ ए० डी०) और प्रथम कुषाण सम्राट् 'कफस' समकालीन थे। कफस के समय १७ ए० डी० से ७८ ए० डी० तक ६१ वर्ष में जहाँ कुषाणों की दो ही पीढ़ियों के नाम मिलते हैं वहाँ हाल से लगाकर सातकर्णि-वंश की ७८ ए० डी० तक पाँच पीढ़ियाँ बीत जाती हैं। इससे विदित होता है कि 'वेम' ने दीर्घ काल तक शासन किया। वेम के शासन के अंत-समय या वेम के उत्तराधिकारी के शासन-काल में (सन् ७८ ए० डी० में) सातकर्णि-वंश में सत्रहवें और हाल से छठी पीढ़ी में उत्पन्न शालिवाहन ने पूर्व से[1] आकर सिंधु के किनारे कुषाणों पर पूर्ण विजय पाई। फारसी इतिहास-ग्रंथ फरिश्तः भी कुषाणों की पराजय पर अरबी इतिहास की पुष्टि करता है—

"किशान (कुषाण) ने अपने सरदारों की सम्मति से अपने पुत्र महाराज को (महाराज कुषाण) योग्य और वीर देखकर अपनी राजगद्दी पर बिठाया। महाराज के भतीजे कैद राजा ने, जो बड़ा वीर था, जंबू में अपना किला बनवाया। कैद के राज में हिंदुओं

(१) डा० कोनो का मत है कि "वेम" के समय एक बार कुषाण शक्ति का समूल नाश हो गया था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ने एक होकर कैद राज पर जबरदस्त हमला किया। लड़ाई में कैद की ऐसी हार हुई कि उसे पंजाब छोड़कर भागना पड़ा" (Elliot VI, Page 547, 448, 555)। उपर्युक्त फारसी ग्रंथ के अवतरण से यह ऐतिहासिक सिद्धांत पूर्ण रूप से तय हो जाता है कि एक समय कुषाणों की ऐसी पराजय हो गई कि उनको अपने प्रधान स्थान पंजाब से भी भागना पड़ा। अब हमको यह सिद्ध करना है कि यह पराजय सन् ७८ ए० डो० में हुई है और विजयी शालिवाहन आंध्रवंश में सत्रहवें और शक शालिवाहनीय संवत् के कर्त्ता थे। इस सिद्धांत को सिद्ध करने के पहले हम आंध्र राजवंशावली लिख देना आवश्यक समझते हैं। इस वंशावली से आंध्रों का समय जानने में सुगमता होगी।

आंध्र वंशावली

१ सिमुक ब्रह्मांड शूद्रक भाग० सिसुक

२ कृष्ण......शूद्रक का भाई

३ सातकर्णि प्रथम 'महान् राजसूययज्ञकर्त्ता' पुष्यमित्र के समकालीन ७० बी० सी०

४ पूर्णोत्संग सातकर्णि...............भागवत पौर्णमास

५ स्कंदस्तंभि ,, ... भाग० चिविलक

६ लंबोदर ,, ... भाग० लंबोदर

७ मेघस्वति ,, ... भाग० मेघस्वति

८ गौतमीपुत्र श्री विलिवायु सातकर्णि द्वितीय नहपान-विजेता २० बी० सी०, भाग० अटमान

९ पुलुमावी प्रथम वाशिष्ठिपुत्र

१० श्रीकृष्ण सातकर्णि ...... भाग० अनिष्टकर्मा

११ हाल सातकर्णि १७ ए० डी० ...... भाग० हालेय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२ पट्टलक-मंडलक-तलक सात०

१३ { पुरिकसेन-प्रविल्लसेन ,,
शिलालेख में श्रीशकसेन ,, भाग० पुरीषभीरु

१४ स्वति-सति ,, भाग० सुनंदन

१५ स्कंदस्वति ,, भाग० चकोर

१६ { महेंद्र-मृगेंद्र ,, भाग० शिवस्वति
ग्रीक मांबरस (Mambaras)
Sarganas Senior (सातकनस)

१७ { कुंतल सातकर्णि............ भाग० गोमतीपुत्र
ग्रीक युवराज सारगनस (सातकनस) ७८ ए० डी०
शालिवाहिनी शक
Junior Sarganas संवत् के प्रतिष्ठापक

१८ { सुंदर सातकर्णि-सुंद्र-सुनंदन
ग्रीक सानंदनस सारगनस
Sandenas Sarganas

१९ पुलुमावी द्वितीय..................भाग० पुरोमान

२० शिवस्वामिन-मथारिपुत्र ,, भाग० शिवस्कंद

२१ गौतमीपुत्र पुलुमावी तृतीय ,,

२२ चंत्रवतु सातकर्णि-वाशिष्ठिपुत्र ,,

२३ यज्ञश्री-गौतमीपुत्र ,, भाग० यज्ञश्री

२४ सातकर्णि तृतीय ,,

२५ शिवश्री-वाशिष्ठिपुत्र सात०

२६ शिवस्कंद ,, भाग० शिवस्कंद

२७ विजय ,, भाग० विजय

२८ चंद्रश्री ,, भाग० चंद्रविज्ञ

२९ पुलुमावी तृतीय ,, भाग० लोमधि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसिद्ध अरबी विद्वान् अलबरूनी ने शक संवत् की उत्पत्ति पर जो कुछ पंक्तियाँ लिख दी हैं वे भी इतिहास के लिये बहुमूल्य हैं।

"शक-काल (शकाब्द) विक्रम-संवत् के जन्म-काल से १३५ वर्ष के अनंतर प्रारंभ होता है। शक संवत् की उत्पत्ति का इतिहास यह है कि एक महाअत्याचारी "शक" पहले सिंध देश पर राज्य करता था। बाद में शक ने हिंदुस्तान-आर्यावर्त को अपना निवासस्थान बनाया। अनेक विद्वान् शक को अल-मंसूर सिंध का शूद्र मानते हैं और किसी पंडित ने शक को अहिंदू और म्लेच्छ माना है। शकराज ने हिंद के रहनेवालों पर बड़ा भीषण अत्याचार किया। अत्याचार के चरम सीमा तक पहुँच जाने पर, पूरब हिंद के राजा विक्रमादित्य ने पंजाब पर आक्रमण कर, करूर के मैदान में "कैद" को हराकर मार डाला। इस विजय की तिथि हिंदू अभी तक नहीं भूले और हिंदू ज्योतिषी इस तिथि को अपने पत्रों में लिखते हैं। इस नए शकाब्द और पुराने विक्रम-शकाब्द में १३५ वर्ष का अंतर है। हम समझते हैं कि शक को मारनेवाले विक्रमादित्य और पुराने विक्रमादित्य एक नाम के दो पुरुष थे; एक नहीं थे" (Elliot)।

अलबरूनी के अनुसार नए विक्रमादित्य (शालिवाहन) की शकों पर विजय तो हम ७८ ए० डी० निश्चित मानते हैं किंतु शक-विजेता शालिवाहन का नाम अलबरूनी ने नहीं लिखा। विजयी शालिवाहन का नाम कुंतल था और वे महेंद्र सातकर्णि के पुत्र थे। इसे ग्रीक जानते थे। प्रसिद्ध विद्वान् मि० स्कोफ (Scoff) ने एक प्राचीन ग्रीक पुस्तक का अनुवाद किया है जिसका नाम पेरिप्लस (Pareplus) है। डाक्टर स्कोफ ने पेरिप्लस का समय ८०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ए० डी० माना है[1]। इस पुस्तक में शालिवाहन-वंश के तीन महत्त्व-पूर्ण नाम मिलते हैं—

(१) मांबरस (Mambaras)

(२) छोटे सारगनस (Sarganas Junior)

(३) सांदनस (Sandenas)

पेरिप्लस का लेखक लिखता है—"एरिका से (आर्यावर्त) मांबरस का राज्य आरंभ होता है। मांबरस और छोटे सारगनस के राज्यकाल में ग्रीक व्यापारी जहाज कल्याण के बंदरगाह में बे-रोक-टोक माल उतारते थे। कल्याण ग्रीक जहाजों के लिये खुला बंदरगाह था। लेकिन जब से कल्याण पर सांदनस का शासन हो गया, ग्रीक जहाजों को लाचार हो कल्याण छोड़कर 'बेरिगाजा' में आना पड़ता था।" उपर्युक्त ग्रीक अवतरण का यह अर्थ है कि पेरिप्लस के समय ८३ ए० डी० में बेरिगाजा (भृगुकच्छ) पर सांदनस का राज्य था और सन् ८३ ए० डी० के पहले छोटे सारगनस और मांबरस कल्याण और भरुकच्छ पर राज्य कर चुके थे।

कुछ विद्वान् मांबरस को नहपान मानते हैं लेकिन यह सिद्धांत भ्रमपूर्ण है। ग्रीक लेखकों ने भारतीय शब्दों का प्राकृत नाम अपनी पुस्तकों में लिखा है। जैसे भृगुकच्छ संस्कृत नाम छोड़कर प्राकृत भरुकछ को बेरिगाजा रूप से प्रयुक्त किया है। मांबरस शब्द महेंद्र सातकर्णि के लिये है, जिनके राज्य में ग्रीक जहाज बे-रोकटोक कल्याण में आते थे। छोटा "सारगनस" शब्द सातकर्णि के स्थान पर है, जिसके प्राकृत रूप "सातकनिस" को पेरिप्लस में सारग-निस (Sarganes) लिखा है। तीसरे सांदनस जो ८३ ए०

---

(१) Letter to V. A. Smith Early History of India, 4th Edition, page 245

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डी० में पेरिप्लस के समय वर्तमान थे और जिनकी आज्ञा से ग्रीक जहाजों को भरुकच्छ में आना पड़ता था, पुराणों के कुंतलपुत्र 'सुंदर' सातकर्णि हैं, जिन्हें ब्रह्मांड में सुनंद और अन्य पुराणों में सुनंदन लिखा है। श्री स्कोफ और श्री जायसवाल सुंदर सातकर्णि का समय ८३ ए० डी० से ८६ ए० डी० और कुंतल सातकर्णि का ७५ ए० डी० से ८३ ए० डी० मानते हैं। अर्थात् कुंतल ने अपने राज्यारोहण के तीन वर्ष बीतने पर करूर में कुषाणों पर विजय पाई। इस विजय की तिथि से दक्षिण और उत्तर भारत में शकाब्द तो प्रचलित ही है, पंजाब के निवासी एक गीत के द्वारा भी परंपरा से शालिवाहन की धार्मिक महाविजय का स्मरण करते रहते हैं। जनरल कनिंघम साहब ने पंजाब के इस परंपरागत गीत को अपनी पुस्तक में स्थान दिया है[1]—

"लाहौर के पास मानिकयाला में राक्षसों का एक भयंकर परिवार निवास करता था। इस अत्याचारी परिवार में तीन भाई और तीन बहिनें थीं। भाइयों के नाम सिरसुख, सिरकप और अंब थे और बहिनों के नाम कपि, मुंड और मुंडेही। जब इन राक्षसों का अत्याचार निर्बल प्रजा पर असह्य हो गया, तब पूरब के राजा शालिवाहन के पुत्र राजा रिसालु ने, पूर्व से आकर, राक्षसों का संहार कर उनके अत्याचार से प्रजा की रक्षा की।"

आजकल भी भिक्षुक इस ऐतिहासिक गीत को पंजाब के गाँवों में घूम घूमकर गाते और भिक्षा माँगते हैं। यह गाथा आजकल भी पंजाब के जनसाधारण के हृदयों में म्लेच्छों पर राजा शालिवाहन की विजय का गौरव भर देती है। डा० कोनो के इस ऐतिहासिक सिद्धांत को भी—कि वीम कुषाण के बाद कुषाण-शक्ति का एक बार समूल नाश हो गया था—यह गाथा पुष्ट करती

(१) A. S. R. II 152—156 AG, page 139

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। गाथा में नाम बदल गए हैं लेकिन फिर भी अपने ऐतिहासिक रूप में हैं। 'सिरकप' शब्द 'कप कफस' या काडफिस प्रथम (Kadphesas I) के लिये और सिरसुख शब्द काडफिस के अप्रसिद्ध भाई के लिये है। 'अंब' शब्द 'वीम' का पर्यायवाची है। कपि, मुंड[1] और मुंडेही नवीन कुषाणों की उप-जातियाँ हैं जो बहिनों के नाम में बदल गई हैं। पुराणों में कुषाण शब्द नहीं है। नवीन शकों के लिये पुराणकारों ने 'मरुंड' और तुषारमरुंड[2] शब्दों का प्रयोग किया है। यही मरुंड या तुषारमरुंड बदलते बदलते गीतों में बहिनों के नाम हो गए हैं। कुषाण-सम्राटों की राजधानी पश्चिम भारत की तक्षशिला नगरी थी। प्राचीन तक्षशिला के राजसिंहासन पर बैठकर कुषाणों ने भारत पर सौ वर्ष से अधिक बड़े आनबान से राज्य किया। इसी तक्षशिला नगरी के खँडहर, जो दो भागों में बँटे हैं, आजकल 'सिरकप' और 'सिरसुख' के नाम से कुषाणों के प्रताप की याद दिलाते हैं।

कुषाण वीम (Kadphesas II) के समय या वीम के अनंतर जिस राजा शालिवाहन या उनके पुत्र ने पूर्व से पंजाब में आकर करूर के युद्ध में कुषाणों को पराजित किया, संस्कृत-साहित्य में उनका नाम विक्रमादित्य है। आंध्र सातवाहनवंशोत्पन्न विक्रमादित्य संस्कृत-साहित्य में इसलिये प्रसिद्ध हैं, कि उनका वंश संस्कृत-साहित्य और उसके विद्वानों का आदर करता रहा। इसलिये राजधानी प्रतिष्ठान-बड़े बड़े धुरंधर विद्वानों से अलंकृत थी। गृह्यसूत्र के लेखक आपस्तंब और बृहत्कथा के रचयिता गुणाढ्य

---

(१) कनिष्ठ का ज़ेडा inscription मरोड डा० कोनो p 143 डा० ओर मरुंडक K P 37।

(२) चतुर्दश तुषार, मरुंडश्च त्रयोदश एकादश मौनः पृथ्वीं त्रयोदश-वर्षशतानि नवनवत्यत्रिकानि भोक्ष्यन्ति। —विष्णुपुराण।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजधानी प्रतिष्ठान की शोभा बढ़ाते थे। महाकवि गुणाढ्य आंध्र विक्रमादित्य के समकालीन थे और सातवाहन विक्रमादित्य के आश्रित[1] भी; इसी से हम बृहत्कथा से आंध्र विक्रमादित्य का वृत्तांत, जो ऐतिहासिक है, विशद रूप से जान सके। गुणाढ्य ने मूल बृहत्कथा की रचना पैशाची भाषा में, एक लाख श्लोकों में, की। पैशाची भाषा में मूल बृहत्कथा की प्रति नहीं मिलती। किंतु बृहत्कथा का सारांश सोमदेव भट्ट-कृत संस्कृत में 'कथा-सरित्सागर' के नाम से मिलता है। ब्राह्मण सोमदेव ने सातवाहन की म्लेच्छों (शक-कुषाण) पर विजय का ऐतिहासिक वृत्तांत लिखा है; किंतु उसे सीधे शब्दों में नहीं कहा। उन्होंने पुराणों की रोचक शैली का परित्याग नहीं किया।

कुछ यूरोपीय विद्वानों ने अपने ग्रंथों में गुणाढ्य का समय ५०० ए० डी० माना है। वेबर साहब ने गुणाढ्य को ईसा की छठी शताब्दी में (६०० ए० डी०) रखा है। छठी सदी में तो बृहत्कथा इतनी पुरानी हो गई थी कि उस समय (६०० ए० डी०) संस्कृत-साहित्य में प्रसिद्ध हो गई थी। ईसा की पाँचवीं सदी में निर्मित संस्कृत नाटक मुद्राराक्षस[2] की मूलकथा बृहत्कथा से ली गई है और छठी सदी में महाकवि बाण ने अपने प्रसिद्ध काव्य हर्षचरित[3] में बृहत्कथा की प्रशंसा का श्लोक लिखा है। संस्कृत कथासरित्सागर का संपादन करनेवाले विद्वद्वर श्री दुर्गाप्रसाद शास्त्री ने गुणाढ्य का समय ७८ ए० डी० के आसपास माना है।

---

(१) ततः स मर्त्यवपुषा माल्यवान् विचरन् वने।
नाम्ना गुणाढ्यः सेवित्वा सातवाहनभूपतिम्।
—कथा-सरित्सागर।

(२) बृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसं।

(३) समुद्दीपितकंदर्पा कृतगौरीप्रसाधना।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा॥ —हर्ष-चरित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इससे गुणाढ्य का कथन इतिहास के लिये हम प्रामाणिक मानते हैं। कथा-सरित्सागर में शकाब्द के प्रतिष्ठापक विजयी शालिवाहन का नाम 'विषमशील' और विक्रमादित्य लिखा है, लेकिन विक्रमादित्य के पिता का नाम लिखकर सोमदेव ने संदेह की जगह नहीं रहने दी। कथा-सरित्सागर के महेंद्रादित्य आंध्र-वंश में सोलहवें महेंद्र सातकर्णि और उनके पुत्र शक-विजेता विक्रमादित्य का १७वें कुंतल सातकर्णि होने में किंचित् मात्र संदेह नहीं रह जाता। सोमदेव ने कुंतल के शक-विजय का बड़ी रोचक पौराणिक शैली से वर्णन किया है—

"एक समय आततायी दुष्ट म्लेच्छों ने बलवान् होकर देवताओं से घोर युद्ध किया। युद्ध में देवगण पराजित हो गए और उनका राज्य विजयी म्लेच्छों ने छीन लिया। पराजित, शोकार्त्त और दुर्दशाग्रस्त, राज्यभ्रष्ट देवगण एक स्थान पर एकत्र होकर, एकमत होकर, देवादिदेव शिव की शरण में गए। अपमानित देवगणों ने शोकाकुल होकर शिव की स्तुति कर प्रार्थना की कि हे देवादिदेव भगवन् आशुतोष! देव-देश पर म्लेच्छों का राज्य हो गया है। आर्यभूमि म्लेच्छों के भार से दब रही है। ये दुष्ट बड़े ही भयंकर अत्याचारी और आततायी हैं। धर्म-कर्म सब बंद हो गए हैं। ये म्लेच्छ ऐसे पापी हैं कि ब्राह्मणों[1] का वध कर डालते हैं। यज्ञों का ध्वंस कर देते हैं। मुनि-कन्याओं का भी बल-पूर्वक हरण कर लेते हैं। ये पापी क्या क्या नहीं करते। हे शिव! आपने और भगवान् विष्णु ने प्राचीन काल में जिन असुरों को मारा वे सब भारत में म्लेच्छ होकर देश को त्रस्त कर रहे हैं।" कथा-सरित्सागर ने तत्कालीन देश-दशा और मनोभाव का यथार्थ चित्र खींच दिया है।

---

(१) व्यापादयन्ति ते विप्रान् घ्नन्ति यज्ञादिकाः क्रियाः।
हरन्ति मुनिकन्यांश्च पापाः किं किं न कुर्वते॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवताओं की दीन प्रार्थना व्यर्थ नहीं गई। दयासागर भगवान् शिव ने प्रकट होकर, देवताओं को भयरहित करते हुए, आश्वासन दिया—"देवगण ! चिंता-रहित हो जाओ। हमारे अंश से हमारा प्रधान गण माल्यवान् आंध्र सातवाहन राजवंश में जन्म लेकर म्लेच्छों को मारकर भूमि का भार उतारेगा। सातों समुद्रों[1] सहित संपूर्ण पृथ्वी और आकाशचारी यक्ष रक्ष वेताल आदि भी इसके वश में रहेंगे।"

देवताओं को निर्भय कर देवादिदेव शिव ने अपने प्रधान गण माल्यवान् को आदेश दिया कि हे माल्यवान् ! पृथ्वी पर आंध्र-राजवंश में जन्म लेकर म्लेच्छों को मारकर देवताओं का कार्य सिद्ध करो। भगवान् रुद्र की आज्ञा पाकर, महागण माल्यवान् ने राजधानी प्रतिष्ठान नगर में आंध्र-राजवंश में, सम्राट् महेंद्रादित्य (Mambaras सोलहवें सातकर्णि महेंद्र) के घर में पटरानी स्वयम्दर्शना के गर्भ से, शिव के अंश से युक्त, एक तेजस्वी बालक के रूप में जन्म लिया। शिव के अन्य गणों ने भी राजमंत्री सुमति के घर में यज्ञ नाम से, महाप्रतिहार वज्रायुध के घर में भद्रायुध और अमात्य (विदेश-मंत्री) श्रीधर के घर महीधर के नाम से जन्म लिया। ये बालक यज्ञ, भद्रायुध और महीधर राजकुमार की बाल्यावस्था के सहचर और युवावस्था में शक-विजय में सहायक तथा आंध्र-साम्राज्य के स्तंभ थे। बाल्यावस्था से ही बलवान् और क्रोधी होने से राजकुमार का नाम विषमशील[2], कुंतल[3] देश जीतने से

(१) यक्षरक्षपिशाचादि पाताळाऽकाशगामति।
वीरः करिष्यति वशे म्लेच्छसंहान् हनिष्यति॥
—कथा-सरित्सागर।

(२) नाम्ना तं विक्रमादित्यं हरोक्तेनाकरोत्पिता।
तथा विषमशीलं च महेंद्रादित्यभूपतिः।

(३) गाथा-सप्तशती के संपादक पं० श्री दुर्गाप्रसाद शास्त्री ने द्वारका से कामगिरि तक कुंतल देश माना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुंतल, और शकों (कुषाणों) पर विजय पाने से विक्रमादित्य पड़ गया।

"शिव[1] के वरदान से महेंद्रादित्य के पुत्र ने अपरांत देश सहित संपूर्ण दक्षिणापथ जीत लिया। पूर्व दिशा में मध्यदेश, सौराष्ट्र और वंग, कलिंग तथा अंग देशों पर विजय पाई, काष्ठ देश सहित कावेरी को भी करद राज्य बना लिया। अनगिनत दुर्गों और द्वीपों को विजय किया। म्लेच्छों के संघ के संघ मारे गए; जो शरण आ गए वही बच सके। बचे शरणागत म्लेच्छों में से बहुत से मनुष्य सेनापति विक्रमशक्ति के कटक में भरती हो गए"।

गुणाढ्य के आश्रयदाता सम्राट् विक्रमादित्य का नाम कुंतल और उनकी शकों पर विजय का समय ७८ ए० डी० है। कुंतल का राज्य-काल ७५-८३ ए० डी० होने में अब कोई संदेह नहीं रह जाता[2]। महाकवि गुणाढ्य विक्रमादित्य की राजसभा में भरुकच्छ के शासक सर्ववर्मन् की सहायता से आए। सर्ववर्मन् स्वयं एक विद्वान् सहृदय पुरुष था। सम्राट् कुंतल की प्रधान पटरानी का नाम मलयावती था। मलयावती मलय देश की राजकन्या और बड़ी विदुषी थी। पटरानी से विशुद्ध संस्कृत में बात न कर

---

(१) सापरांतच्छदेवेन निर्जितो दक्षिणापथः।
मध्यदेशः ससौराष्ट्रः सवङ्गाङ्गा च पूर्वदिक् ॥
सकश्मीरा च कावेरी काष्ठा च करदीकृता।
तानि तान्यपि दुर्गाणि द्वीपानि विजितानि च ॥
म्लेच्छसंघाश्च निहिताः शेषाश्च स्थापिता वशे।
ते ते विक्रमशक्तेश्च प्रविष्टाः कटके नृपाः ॥

(२) टालोमी, जिसका निश्चित समय १०४ ए० डी० है, अपनी पुस्तक में चष्टन को उज्जयिनी का शासक लिखता है। इससे भरुकच्छ के आंध्र सामंत सर्ववर्मन् और सैराष्ट्र के सामन्त विजयवर्मन् का समय १०० ए० डी० से पहले अर्थात् ७५-८३ ए० डी० में निर्विवाद है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकने से सम्राट् लज्जित होते थे, इसी से सर्ववर्मन् ने महाकवि गुणाढ्य को राजसभा में नियुक्त करा दिया। महाकवि ने कातंत्र व्याकरण रचकर सम्राट् को विद्यारसिक बना दिया। कामसूत्र में भी कुंतल सातवाहन की पटरानी मलयावती और उसकी शोक-जनक मृत्यु का वर्णन है। एक समय जब वसंत ऋतु का आगमन हो रहा था, उद्यान में सम्राट् कुंतल से प्रेमालाप करते, आलिंगन के समय, मलयावती की मृत्यु हो गई।

कथा-सरित्सागर से ज्ञात होता है कि सम्राट् युद्ध-विद्या में ही नहीं, अपने पूर्वज गौतमीपुत्र के समान, राजनीति में भी दक्ष थे। जैसे गौतमीपुत्र ने कण्व-राजकन्या से विवाह कर पाटलिपुत्र का सिंहासन प्राप्त कर लिया था, उसी नीति पर चलकर कुंतल ने अनेक देशों से विवाह-संबंध कर उनको एकता-सूत्र में बाँध दिया। सम्राट् कुंतल की तीन पटरानियाँ थीं—पहली मलय देश की राज-कन्या मलयावती, दूसरी दक्षिण करनाटक देश की राजकन्या कर-नाटकी, तीसरी कलिंगराजकन्या कलिंगसेना। कलिंगसेना से कुंतल सातकर्णि के विवाह की गाथा लिखकर गुणाढ्य ने एक ऐतिहासिक घटना को प्रकट कर दिया है। कलिंगसेना के विवाह से ही आंध्र और कलिंग राजवंश की परंपरागत शत्रुता दूर हो ही गई और सम्राट् कुंतल ने कलिंगदेश के प्रसिद्ध हाथियों से भी अपना सैन्य-बल बढ़ाया।

कलिंग-नरेश एक हरे-भरे धन-धान्य-संपन्न देश के राजा तो थे ही, उग्र जंगली जातियों—भिल्लों और शबरों—के भी राजा थे। कलिंग देश और भिल्लों को पूरी तरह वशवर्ती करने के लिये विषम-शील कुंतल ने भिल्ल राजकन्या मदनसुंदरी से विवाह कर भिल्लों को भी वश में कर लिया। सम्राट् कुंतल के अधीन नरेशों में कलिंग और काश्मीर का नाम महत्त्वपूर्ण है। कलिंग देश को बिना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिलाए कुंतल विषमशील के सेनापति राजा विक्रमशक्ति के लिये पूर्व दिशा में अंग, वंग, मगध और गौड़ देशों को जीतना असंभव था। दक्षिणापथ विजय करने में करनाटक देश से उनको सहायता मिली। देश-शत्रु कुषाण शकों से महायुद्ध में काश्मीर-नरेश का संयोग भी बहुमूल्य था। पूर्व, दक्षिण और मध्य देश के राजाओं को अधीन कर कुंतल सातवाहन ने, बड़ी दृढ़ता और वीरता से, मथुरा और तक्षशिला के युद्धदुर्मद म्लेच्छों पर आक्रमण किया। आंध्र सम्राट् कुंतल विषमशील के साथ ससैन्य भारत के सब छोटे-बड़े नरेश शकों से युद्ध करने के लिये प्राण उत्सर्ग करने को एकत्र हो गए जिनमें मुख्य ये हैं—

करनाटक	जयध्वज
गौड़	शक्तिकुमार
लाट (सौराष्ट्र)	विजयवर्मन्
काश्मीर	सुनंदन
सिंध	,,
विंधवल	गोपाल
पारसीक	निमुक
कलिंग	कलिंगसेन (भद्रसेन-वीरसेन)

उपर्युक्त आठ सामंत नरेशों के साथ विषमशील कुंतल शालिवाहन ने सौराष्ट्र और मथुरा से म्लेच्छों को उच्छिन्न करके सिंधु के किनारे म्लेच्छों के प्रधान स्थान पर भयंकर आक्रमण किया। यह महायुद्ध (अलबरूनी की उक्ति के अनुसार) करूर के रणक्षेत्र में हुआ, जिसमें दल के दल म्लेच्छ (कुषाण) मारे गए; जो बचे वे सेनापति विक्रमशक्ति की शरण में आ गए। इस इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध (सन् ७८ ए०डी०) में विजयश्री प्राप्त कर और म्लेच्छों का संहार कर, देश को अत्याचार से मुक्त कर, शिव का वरदान पूरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर, सम्राट् कुंतल उज्जयिनी में लौट आए। भारत की प्रधान नगरी उज्जयिनी में अधीन राजाओं के साथ विजयी सम्राट् शालिवाहन बड़े धूमधाम से प्रविष्ट हुए। शक-विजय के उपलक्ष्य में बड़ा भारी महोत्सव मनाया गया। भारत भर से ब्राह्मण, राजा, महाराजा, व्यापारी, राजकर्मचारी उज्जयिनी में एकत्र हुए। सबों ने, जिनमें महाकवि गुणाढ्य भी थे, सम्राट् महेंद्रादित्य के पुत्र विजयी सम्राट् विषमशील कुंतल सातकर्णि शालिवाहन[1] को एकमत से—आशीर्वाद देकर—विक्रमादित्य पदवी से विभूषित किया। सम्राट् कुंतल की यह अभिषेक-तिथि देश में धार्मिक मानी जाती है और इसी तिथि से ब्राह्मण शालिवाहनीय शकाब्द का आरंभ करते हैं। इस शालिवाहनीय शकाब्द का व्यवहार नर्मदा नदी के दक्षिण में परंपरा से धर्म और साधारण कार्यों में समान रूप से होता आया है और यावच्चंद्रदिवाकर होता रहेगा।

---

(१) कथा-सरित्सागर के निम्नलिखित दो श्लोकों से कुंतल सातकर्णि विक्रमादित्य के प्रताप का कुछ आभास मिलता है—

जय विजितसकलपार्थिवविनतशिरोधारि तात गुर्वाज्ञ।
जय विषमशील विक्रमवारिनिधे विक्रमादित्य ॥ १ ॥
जय जय तेजःसाधितभूतगणम्लेच्छविपिनदावाग्ने।
जय देव सप्तसागरसीममहीमानिनीनाथ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१०) चंदेल राजा परमाल (परमार्दिदेव) के समय का एक जैन शिलालेख

(विक्रम-संवत् १२३७)

[लेखक—श्री हीरालाल जैन, एम० ए०, एल्-एल० बी०, अमरावती]

बुंदेलखंड प्रांत में अनेक स्थानों पर जैनियों के प्राचीन मंदिर, मूर्तियाँ और शिलालेख पाए जाते हैं। इन स्थानों में खजुराहो सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ के कारीगरी-पूर्ण जैन मंदिरों में चंदेल राजाओं के समय के, दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक के, शिलालेख मिले हैं। इसी प्रांत के अंतर्गत ओरछा रियासत की राजधानी टीकमगढ़ से दस मील पूर्व की ओर 'अहार' नामक एक ग्राम है। यहाँ दिगंबर जैनियों के तीन प्राचीन मंदिर हैं जो आजकल क्रमशः 'बड़ा मंदिर', 'दहलान' और 'सभा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। बड़े मंदिर के मूल नायक शांतिनाथ तीर्थंकर की विशाल, खड्गासन मूर्ति श्वेतहरित, देशी चमकदार पाषाण की बनी हुई, १८ फुट ऊँची, है। जान पड़ता है इसके हस्त-चरणादि अवयव किसी समय, किसी कारण से, खंडित हो गए थे जो पीछे से जोड़ दिए गए हैं। इस मूर्ति के आसन पर एक लेख खुदा हुआ है। इसी लेख का परिचय यहाँ दिया जाता है।

(१) लेख का आकार—लेख शांतिनाथ भगवान् की मूर्ति के आसन के सामने की बाजू पर २ फुट ४ इंच चौड़ाई तथा ९ इंच ऊँचाई में है। आसन के बीचोबीच मूर्ति-चिह्न बना हुआ है। उसी के दाएँ-बाएँ लेख है। कुल पंक्तियाँ ९ हैं जो बीच के चिह्न के कारण छोटी-बड़ी हैं, इसी से प्रति पंक्ति में ३२ से लगाकर ५० तक अक्षर हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) **भाषा और लिपि**—लेख संस्कृत भाषा में है और बारहवीं शताब्दी की नागरी लिपि में लिखा गया है। अक्षर बड़े बड़े, लगभग एक इंच आकार के, सुंदर रूप में हैं। कहीं कहीं वर्णों की अशुद्धियाँ पाई जाती हैं; उदाहरणार्थ 'श्' के स्थान पर 'स्', रस्मि (रश्मि), स्रीमान् (श्रीमान्) पंक्ति १; स्रमार्त्ता (श्रमार्त्ता) पंक्ति ३; सुक्र (शुक्र) पंक्ति ७; सुद्ध (शुद्ध) पंक्ति ८; सास्त्रज्ञः (शास्त्रज्ञः) पंक्ति ९; 'ण' के स्थान पर न—यथा, क्रमेन (क्रमेण) पं० ३; 'ब' के स्थान पर व—यथा विंवं (बिंबं) पं० ९।

(३) **लेख का प्रयोजन**—जिस मूर्ति के आसन पर लेख खुदा हुआ है उस मूर्ति की प्रतिष्ठा करानेवाले सेठजी के वंश की स्मृति के निमित्त यह लेख लिखा गया है। लेख में कहा गया है कि 'गृहपति-वंश' में उत्पन्न श्रीमान् देवपाल ने 'वाणपुर' में सहस्रकूट नामक जिन-मंदिर बनवाया। उनके पुत्र रत्नपाल हुए जिनकी कीर्ति जगत् भर में भ्रमण करके जिनायतन में स्थिर हुई। वांद॰पुर में श्रीशांतिनाथ चैत्यालय बनवानेवाले सेठ रल्हण हुए। इसी संबंध में सेठ गल्हण का नाम भी आया है। पर लेख जगह जगह स्पष्ट नहीं पढ़ा जाता इससे यह ठीक ठीक ज्ञात नहीं हो सका कि इन सेठों का रत्नपाल से क्या संबंध था। रल्हण के पुत्र जाहड हुए जिनके दो और छोटे भाई थे। इन्हीं दोनों भाइयों ने शांतिनाथ चैत्यालय निर्माण कराया और संवत् १२३७ मगसिर सुदि ३ शुक्रवार को शांतिनाथ की प्रतिष्ठा कराई। मूर्ति का निर्माण वास्तु-कला में प्रवीण, वाल्हण के पुत्र पापट ने किया था तथा यह सुकीर्तन (लेख) धर्मकारी नाम के एक कवि ने रचा था।

(४) **ऐतिहासिक वार्ता**—लेख की प्रथम पंक्ति में जो वाणपुर का उल्लेख है यह टीकमगढ़ के पास का वर्तमान 'बानपुर' ही प्रतीत होता है। संभवतः उसी का नाम वांदपुर भी था। यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'अहार' से १६ मील दूर है। वहाँ सहस्रकूट चैत्यालय अब भी विद्यमान है।

लेख की चौथी पंक्ति में 'मदनेशसागरपुर' का भी उल्लेख है। वहाँ भी मंदिर बनवाया गया था। ज्ञात होता है कि जहाँ पर अब अहार ग्राम बसा हुआ है वहाँ ही पूर्वकाल में एक नगर था जो मदनेशसागरपुर कहलाता था। अहार के समीप पपौरा नामक एक ग्राम है। वहाँ भी प्रसिद्ध जैन मंदिर हैं। वहाँ के मंदिर के तहखाने में विराजमान एक मूर्ति संवत् १२०२ की है और उसमें प्रतिष्ठा के समयसूचक वाक्यों में 'मदनेशवर्मदेवराज्ये' ऐसा वाक्य आया है। जान पड़ता है कि चंदेल-वंश के इन्हीं मदनेशवर्मदेव ने अपने नाम से एक 'सागर' (तालाब) बनवाया था और उसी के पास नगर बसाकर उसका नाम मदनेशसागरपुर रखा। वर्तमान 'अहार' भी एक तालाब के किनारे बसा है। यही तालाब मदनेशवर्मदेव द्वारा संवत् १२०० के लगभग बनवाया हुआ 'मदनेशसागर' प्रतीत होता है।

लेख की सातवीं पंक्ति में संवत् १२३७, मार्ग (मगसिर) शुक्ल ३ शुक्रवार का उल्लेख है जो मूर्तिप्रतिष्ठा की तिथि जान पड़ती है। उसी के साथ कहा गया है कि उस समय परमार्दिदेव का राज्य प्रवर्तमान था। ये परमार्दिदेव चंदेल-वंश के वे ही राजा परमल या परिमल हैं जिनके पृथ्वीराज से युद्ध का वर्णन चंदबरदाई के पृथ्वी-राज-रासो में पाया जाता है तथा जो जगनक भाट के लोकप्रिय 'आल्हा काव्य' द्वारा खूब प्रसिद्ध हुए हैं। इनकी राजधानी महोबा में थी और ये कीर्तिवर्मा चंदेल के उत्तराधिकारी थे। इनके शिला-लेख कालिंजर, मदनपुर, अजयगढ़, खजुराहो और महोबा में पाए गए हैं जिनसे इनके राज्य का समय विक्रम-संवत् १२२२ से १२६० तक सिद्ध होता है। इन्हें पृथ्वीराज चौहान ने संवत् १२३९ में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हराया था और फिर संवत् १२६० में मुसलमान बादशाह कुतुबुद्दीन ऐवक ने उनसे कालिंजर का किला जीत लिया। तभी से चंदेल राज्य की प्रायः इतिश्री हो गई। वर्तमान लेख पृथ्वीराज से युद्ध होने के दो वर्ष पूर्व लिखा गया था, जब कि चंदेलराज परमार्दिदेव की राज्यश्री अपनी उन्नति के उच्चतम शिखर पर थी।

शिलालेख

(नोट—कोष्ठक के भीतर दिए हुए अंकों से मूल लेख की पंक्तियों का अभिप्राय है।)

(१) ओं नमो वीतरागाय ॥

गृहपति-वंश-सरोरुह-सहस्ररश्मिः[१] सहस्रकूटं यः।
वाणपुरे व्याधितान्वीत् (?) श्रीमानिह[२] (२) देवपाल इति ॥ १ ॥

श्रीरत्नपाल इति तत्तनयो वरेण्यः
पुण्यैकमूर्त्तिरभवद्वसुहादिकायां (?)।
कीर्त्तिर्ज्जगत्त्रय-(३) परिभ्रमणश्रमार्त्ता[३]
यस्य स्थिराजनि जिनायतने क्रमेण[४] ॥ २ ॥

···वदनून-बुद्धि-निधिना श्री शान्तिचैत्यालयो (४)
दिष्ट्याबांदपुरे परः परनरानंदप्रदः श्रीमता।
येन श्री मदनेशसागरपुरे तज्जन्मनो निर्म्मिमे
सोयं श्रेष्ठिवरिष्ठ गल्हणवति (?) श्रीरल्हणः
व्या(५)सृजत् (?) ॥ ३ ॥

तस्मादजायत कुलाम्बरपूर्णचंद्रः
श्रीजाहडस्तदनुजो दयवां(?)नामा।
एकः परोपकृतिहेतु-कृतावतारो
धर्म्मात्मकः पुनरमोघ(६)सुदानसारः ॥ ४ ॥

---

(१) मूल में 'रस्मिः' है। (२) मूल में 'स्त्रीमान्' है। (३) मूल में 'स्त्रमार्त्ता' है। (४) मूल में 'क्रमेन' है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताभ्यामशेष[1]-दुरितावशमैकहेतु[2]
निर्म्मापितं भुवनभूषणभूतमेवत् ।
श्रीशान्तिचैत्यमतिदिव्यसुखप्रदं (७) च
मुक्तिश्रियो वदनवीक्षण-लोलुपाभ्याम् ॥ ॐ ॥

ठ ठ ठ

संवत् १२३७ मार्ग्ग सुदि ३ सुक्रे श्रीमत्परमार्दिदेवविजयराज्ये[3]—

(८) चंद्र-भास्कर-समुद्र-तारका यावदत्र जनचित्तहारकाः ।
धर्मकारिकृतशुद्ध[4]कीर्त्तनं तावदेव जयतात्सुकीर्त्तनम् ॥

(९) वाल्हणस्य सुतः श्रीमान् रूपकारो महामतिः ।
पापटो वास्तुशास्त्रज्ञस्तेन बिंबं[5] सुनिर्म्मितं ॥

अनुवाद

ओं । वीतराग को नमस्कार । जिन्होंने वाणपुर में सहस्र-कूट (नामक चैत्यालय) निर्माण कराया ऐसे गृहपतिवंश-रूपी कमल के सूर्य श्रीमान् देवपाल यहाँ हुए हैं ॥ १ ॥

उनके रत्नपाल नाम के उत्तम पुत्र हुए जो पुण्य की एक ही मूर्ति थे......। उनकी कीर्त्ति तीनों लोकों में भ्रमण करने के पश्चात्, श्रम से थककर, क्रम से जिनायतन में स्थिर हो गई॥ २ ॥

...के समान विशाल बुद्धि के निधान जिन श्रीमान् ने सौभाग्य से, सब लोगों को आनंद देनेवाला, उत्तम श्री शांतिचैत्यालय बांदपुर में निर्माण कराया वे श्रीमदनेशसागरपुर में जन्म लेनेवाले (?) श्रेष्ठिवर गल्हण के...श्री रल्हण हुए (?) ॥ ३ ॥

---

(१) मूल में 'सेस' है। (२) मूल में 'समैक...' है। (३) मूल में स्रीमत् है। (४) मूल में 'सुद्ध' है। (५) मूल में विंवं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनसे, कुलरूपी आकाश में पूर्णचंद्र के समान, श्री जाहड उत्पन्न हुए जिनके...नाम के दो अनुज हुए। इनमें से एक ने परोपकार के हेतु ही अवतार लिया था। वे बड़े धर्मात्मा और दानशील थे ॥४॥

उन दोनों ने मुक्ति-श्री का मुख देखने की लालसा से समस्त पापों के उपशम का एक हेतु, भुवनभूषण और अतिदिव्य सुखों को प्रदान करनेवाला यह श्री शांतिचैत्यालय निर्माण कराया॥ ५ ॥

संवत् १२३७ मार्गशीर्ष सुदि ३ शुक्रवार को श्रीमान् परमार्दि-देव के विजय-राज्य में—

जब तक यहाँ चंद्र, सूर्य, समुद्र और तारे लोगों के चित्त को आकर्षित करते हैं तब तक ही धर्मकारी का बनाया हुआ, शुद्ध कीर्तिवाला, यह सुकीर्तन जयवंत होवे॥ ६ ॥

वाल्हण के सुत श्रीमान् रूपकार (मूर्तिकार) महामति, वास्तु-शास्त्र में प्रवीण, पापट ने यह बिंब अच्छी तरह निर्माण किया॥७॥

नोट—इस लेख का पाठ मैंने अहार क्षेत्र की प्रबंधक कमेटी के मंत्री श्रीयुक्त पंडित बारेलालजी जैन वैद्यभूषण द्वारा भेजी हुई, पेंसिल घिसकर कागज पर तैयार की गई, दो प्रतिलिपियों पर से पढ़ा है।—लेखक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(११) महामहोपाध्याय महाकवि श्री शंकरलाल शास्त्री की जीवनी तथा उनके ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय

[लेखक—श्री शिवदत्त शर्मा, देहली]

संस्कृत के कई प्रकांड पंडितों के निवास के कारण उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध काठियावाड़ के इतिहास में एक विशेष महत्त्व का समय है। इसी समय में वहाँ गुरु "रामबाबा" विद्यमान थे जो वेदांतशास्त्र के उच्च कोटि के विद्वान् थे[1]। ये महात्मा अपने मुख से सतत रामनाम का उच्चारण किया करते थे इसलिये इनका नाम "रामबाबा" पड़ गया था। इसी समय में यहाँ एक और स्वामी, जिनका मूल नाम पूर्णानंद था परंतु श्री टोकरानंदजी के नाम से प्रसिद्ध थे, वेदांत का तथा सदाचार के साथ देशभक्ति का भी प्रचार किया करते थे। ईश्वर-भक्ति के प्रचार से तो भारतवासी सुपरिचित हैं किंतु देशभक्ति के प्रचार और प्रचारकों में बहुधा इस देश की प्रजा का यथेष्ट श्रद्धा का अभाव देखा गया है। ऐसी मनोवृत्ति के कारण श्री टोकरानंदजी को राजनैतिक संन्यासी समझनेवालों की भी कमी नहीं थी और एक बार स्वामीजी को कारावास भी भोगना पड़ गया था। उस समय ऐसे कई एक सरस्वती-पुत्रों के प्रभाव से काठियावाड़-निवासियों को भारत के प्राचीन धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र की शिक्षाओं की उपलब्धि का सुलभ अवसर प्राप्त हुआ। उस समय श्री शास्त्री केशवजी मुरारजी ने, जो स्वामी टोकरा-

(१) श्री रामबाबा न संस्कृत भाषा में "पंचीकरण" नामक वेदांत-विषयक एक पुस्तक लिखी जिसका गुजराती अनुवाद उनके शिष्य जयकृष्ण जीवनराम ने किया। इसके हिंदी और मराठी भाषांतर भी हो चुके हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नंदजी के एक शिष्य थे, संस्कृत-साहित्य के विविध विभागों की शिक्षा के प्रसार की एक योजना जामनगर में प्रारंभ की। ये अपने समय के उस देश में अद्वितीय वैयाकरण, गणितज्ञ, दैवज्ञ, दर्शनज्ञ तथा खगोलविद्याभिज्ञ थे। ये श्री शंकराचार्य-प्रतिपादित वेदांत-शास्त्र के भी प्रकांड पंडित थे। इन्हीं विद्वच्चक्रचक्रवर्ती के प्रधान शिष्यों में इस लेख के नायक श्री शंकरलाल शास्त्री की गणना थी।

इनका जन्म विक्रम-संवत् १८९९ के आषाढ़ वदि ४ मंगलवार को जामनगर में, भारद्वाज-गोत्री प्रश्नोरा नागर ब्राह्मण-कुल में, हुआ था। ये जामनगर के प्रख्यात रसवैद्य झंडू भट्टजी के कुटुंबी थे। इनके पिता श्री महेश्वर भट्ट संस्कृत के कृतविद्य थे और गुजराती भाषा में पद्य-रचना भी किया करते थे। इनकी माता का नाम मोंगीबाई था। बचपन से ही संस्कृत भाषा में इनकी स्वाभाविक प्रीति थी। संस्कृत व्याकरण और साहित्य की प्रारंभिक शिक्षा पूज्य पिता से प्राप्त कर इन्होंने आठ वर्ष की अवस्था में उपनयन-संस्कारानंतर गुरुवर्य्य श्री केशवजी शास्त्री से शिक्षा ग्रहण करना प्रारंभ किया। ग्यारह वर्ष की आयु में इन्होंने सारस्वत व्याकरण और महाकवि कालिदास के कुमारसंभव काव्य का सर्वांगपूर्ण अध्ययन समाप्त किया और संस्कृत भाषा में पद्य-रचना करने की शक्ति भी द्योतित की। अध्ययन-परायण तत्परता के कारण पंद्रह वर्ष की आयु में तो इनका अध्ययन बहुत कुछ आगे बढ़ गया था और ये गुरुजनों को अपनी धारणा तथा स्फूर्त्ति का अद्भुत परिचय देने लगे। उन दिनों में दक्षिण देश से एक तैलंग ब्राह्मण, जो "बाल-सरस्वती" कहलाते थे, जामनगर पधारे। वे अवधान किया करते थे। शंकरलालजी को भी अवधान करने का प्रयास करने की आज्ञा दी गई। आश्चर्य है कि इन्होंने, प्रथम अवसर पर ही, इस विषय में पूर्णतया सफलता प्राप्त कर विद्वानों के चित्त को चमत्कृत कर दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस निष्पत्ति से इनको अतुलनीय कीर्ति प्राप्त हुई; यहाँ तक कि श्रीमंत नरेंद्र जाम विभाजी ने अपने दरबार में इनका सम्मान किया। कुछ समय पश्चात् एक दूसरे विद्वान् स्वामी सदानंदजी वहाँ पधारे।

शंकरलालजी ने उनके सन्निधान में षडवधान किया और अपनी स्मरण-शक्ति के प्रभाव से अशुद्ध और अयथाविधि उच्चरित शब्दों को शुद्ध यथाक्रम कर उनसे यथानिर्दिष्ट शैली के तत्काल नानार्थक छंद बनाए। स्वामीजी तरुणवयस्क शंकरलालजी की व्युत्पन्नता और वैदुष्य से बहुत संतुष्ट हुए और कहने लगे कि यह व्यक्ति निकट भविष्य में निस्संदेह एक उच्च कोटि का कवि और कोविद होगा। स्वामीजी की यह भविष्यवाणी वस्तुतः अक्षरशः सत्य निकली।

जब गुरुवर्य्य श्री केशवजी मुरारजी से ये पढ़ चुके तब इन्होंने उनसे गुरु-दक्षिणा के लिये सविनय निरूपण करना चाहा। स्नेहांक गुरुजी ने उस समय यह कहकर टाल दिया कि जब अवसर आयगा, हम गुरु-दक्षिणा ले लेंगे। गुरुजी को यथेष्ट अवसर प्राप्त करने में विलंब भी नहीं लगा; क्योंकि ऐसा संयोग हुआ कि एक पंडित गोपीभट्ट वहाँ पर आए और उन्होंने शास्त्रार्थ की ठानी। गुरुजी ने शिष्य शंकरलाल को बुलाया और कहा कि पंडित गोपीभट्ट ने शास्त्रार्थ के लिये चुनौती दी है। तुम मेरी तरफ से इसे स्वीकार करो। बस, इस उद्भट भट्ट से सफलता प्राप्त करना ही मैं सगौरव गुरु-दक्षिणा-प्राप्ति समझ लूँगा। गुरु की आज्ञा पाकर अभिनव पंडित शंकरलालजी ने अपने वाक्-कौशल, शास्त्र-ज्ञान, तर्कशीलता और स्मरण-शक्ति का वह अद्भुत चमत्कार दिखाया कि श्रोतागण के मुख से वाह वाह निकलने लगी और विपक्षी नतमस्तक हो गया। इस विजय ने इनकी ही नहीं, किंतु इनके गुरु की कीर्त्ति को भी अधिक विस्तृत किया। तदनंतर कुछ काल के पश्चात् शास्त्री शंकरलालजी बंबई चले गए। वहाँ इन्होंने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कई विद्या-प्रेमियों को संस्कृत शास्त्रों का अध्ययन कराया और सम्मान प्राप्त किया। वे फिर मोरवी बुला लिए गए और वहाँ पर संस्कृत पाठशाला के मुख्य अध्यापक नियुक्त किए गए। इनसे श्रीमंत ठाकुर रवाजी राज मोरवी के शासक की जीवनी व राज-कुल का इतिहास लिखने की प्रार्थना की गई थी। यद्यपि उस समय इनकी आयु २१ वर्ष की ही थी परंतु इन्होंने उस कार्य को स्वीकार किया और बहुत से कामों में व्यग्र होते हुए भी तीन वर्ष में यह रचना समाप्त कर डाली; किंतु खेद का विषय है कि ग्रंथ-संपादन का अवसर आने के पूर्व ही ठाकुर साहब स्वर्ग-वासी हो गए। तदनंतर यह "**श्रीरवाजीराजकीर्त्तिविलास**" नामक ग्रंथ, जो बड़ी खोज और परिश्रम से लिखा गया था, स्वर्गीय ठाकुर साहब के एक मित्र के पास अँगरेजी भाषा में अनुवाद करने के लिये भेजा गया परंतु अनुवाद होना तो दूर रहा मूल ग्रंथ ही खो गया।

शास्त्रीजी एक बार फिर बंबई पधारे और पंडित-मंडित-मंडलियों में अवधान दिखाया और "अष्टावधानी शीघ्रकवि" की पदवी प्राप्त की। वे ऐसे सरल और निरभिमानी थे कि अपने मुख से कभी कभी यह कहते थे कि मुझमें संस्कृत व्याकरण का ज्ञान उतना ऊँचा नहीं है जितना होना चाहिए था, किंतु वरदराज की लघुसिद्धांत कौमुदी पर रची हुई उनकी "**प्रयोगमणिमाला**" नामक विस्तृत टीका इस बात का प्रमाण है कि वे व्याकरण जैसे कठिन और नीरस कहे जाने-वाले विषय को अपनी निपुणता से कैसा सक्रम, सरल और सरस बना सकते थे। प्रयोगमणिमाला विविध बुधजनों से सम्मानित होकर देश-देशांतरों के विद्यार्थियों का कंठाभरण हो चुकी है।

उन्होंने बाईस वर्ष की आयु में "**अनसूयाभ्युदयम्**" और "**भोगवतीभाग्योदयम्**" नाटकों की रचना की जिनमें बहुत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुंदरता से सती अनुसूया और भोगवती आदि स्त्रियों का सुकृत संकीर्तन किया है। उन्होंने नर्मदा नाम की पतिप्राणा सती की कथा में अनुसूया-माहात्म्य संपूर्ण रीति से प्रदर्शित कर दिया है। ये रचनाएँ विद्वत्परिषद् में पढ़ी गईं और बहुत पसंद की गई थीं।

इन्होंने "सावित्रीचरित" नामक नाटक, जिसमें सत्यवान्-सावित्री और उनके माता-पिता का अद्भुत चरित-चित्रण है, रचा। इस पुस्तक में कन्या, कुमार, पति और पत्नी के कर्तव्यों का मनोहर दृश्य दिखलाया गया है। सुप्रसिद्ध प्रोफेसर मैक्समूलर ने इस रचना की बहुत प्रशंसा की थी। कॅम्ब्रिज विश्वविद्यालय के संस्कृत के प्रोफेसर Bandol ने लिखा था कि यह पुस्तक कालिदास की सी सरलता और शोभा से परिपूर्ण है। इस नाटक का गुजराती अनुवाद वैद्य विश्वनाथ विट्ठलजी तथा भट्ट केशवलाल हरिराम ने, जो मोरवी की श्री रवाज़ी राज पाठशाला के विद्यार्थी थे और शास्त्री शंकरलालजी के शिष्य थे, संवत् १९३७ में किया। यह गुजराती अनुवाद इतना लोकप्रिय हुआ कि इसकी प्रथमावृत्ति छपने के पाँच मास बाद ही समाप्त हो गई। तदनंतर द्वितीयावृत्ति संवत् १९४२ के वैशाख मास में छपकर निकली। ठीक नौ वर्ष पश्चात् इसकी तृतीयावृत्ति छपी। इसकी चौथी आवृत्ति चंदुलाल कालीदास वैद्य ने प्रकाशित की है। इससे यह सिद्ध है कि लोगों का इस पुस्तक के पढ़ने में अद्यावधि अन्यून प्रेम विद्यमान है।

विक्रम संवत् १९५८ की कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा सोमवार को शास्त्रीजी का रचा हुआ "श्रीगोपालचिंतामणिविजयं छायानाटकम्" प्रकाशित हुआ। इस नाटक में सात अंक हैं और जैसा इसके नाम से प्रकट है, इसमें श्रीकृष्ण की गो-भक्ति का अनुपम चित्र चित्रित किया गया है। भगवान् कृष्ण का चरित सुविख्यात है, ऐसी स्थिति में गो-भक्ति जैसे विषय पर मौलिक रूप से ऐसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्कृष्ट नाटक की रचना कर देना—जो देखने से नितांत नवीन प्रतीत हो, शास्त्रीजी की नूतन निर्माण-निपुण मेधा का प्रखर प्रमाण है। इस ग्रंथ का गुजराती अनुवाद इसके साथ ही छपा है। शास्त्रीजी के एक परमप्रिय मित्र वैद्यराज श्री जटाशंकर विट्ठलजी थे। वि० सं० १९५७ में उनका कैलासवास हो गया। इस वियोग ने शास्त्रीजी के कोमल हृदय को अत्यंत पीड़ित किया। यह गोपाल-चिंतामणि विजय नाटक उनके पवित्र नाम-स्मरण के लिये समर्पित किया गया है। शास्त्रीजी ने प्रत्येक अंक के अंत में एक श्लोक श्री जटाशंकर के संबंध में लिखा है। इस पुस्तक के प्रारंभ में श्री जटाशंकर का परिचय तथा कई सज्जनों द्वारा समर्पित निवापांजलि भी छपी है। इस व्यक्ति का वियोग शास्त्रीजी के कोमल हृदय पर एक ऐसा तीव्र वज्रपात था कि जिसकी विकट वेदना कभी नहीं मिटी। इसको "यस्यात्मैव वपुर्द्धरः प्रियसुहृद्रत्नं जटाशंकरस्तस्येयं कृतिः......" आदि वाक्यों द्वारा अपने नाना ग्रंथों में स्मरण किया है।

विक्रम-संवत् १९६८ की आश्विन-शुक्ला दशमी रविवार को "ध्रुवाभ्युदयम्" नामक नाटक छपकर प्रकाशित हुआ। शास्त्रीजी ने इसको नामदार महाराणा श्री दौलतसिंहजी लींबडी-नरेश के अर्पण किया और उनकी संक्षिप्त प्रशस्ति भी लिखी। शास्त्रीजी ने लिखा है कि इस दृश्य काव्य के रचने की प्रेरणा राज-वैद्य करुणाशंकर ने, जो भट्ट झंडू विट्ठलजी के नाम से अधिक प्रख्यात हैं, की और वे इसकी संपूर्णता को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। पुस्तक के छपने की योजना के पूर्व ही वैद्यजी सुरपुर पधार गए। तदनंतर लींबडी-नरेश की सहायता से इसका प्रकाशन हो सका। यह पुराण-प्रसिद्ध वार्त्ता है कि महाराज उत्तानपाद के दो रानियाँ थीं; एक का नाम था सुनीति और दूसरी का सुरुचि। सुनीति से युवराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्रुव उत्पन्न हुआ और सुरुचि से उत्तम। सुनीति सरल प्रकृति की स्त्री थी परंतु सुरुचि कुटिल थी और महाराज के निष्कपट मन को बिगाड़ने का उद्योग किया करती थी। कुमार ध्रुव की वर्षगाँठ के महोत्सव का अवसर आने पर उसकी माता ने महाराज को मृदुल मधुर प्रेमपीयूषपूर्ण पत्रिका लिख सादर सुरुचि सहित निमंत्रित किया। इस सूचना को पाकर राजा का हृदय प्रफुल्लित हुआ, परंतु सुरुचि ने कपट-प्रबंध द्वारा निमंत्रण को स्वीकृत न होने दिया और ध्रुव का, सत्कार के स्थान में, तिरस्कार हुआ। इससे खिन्न हो वह तपश्चर्य्या करने चला गया और अंत में उसने वह कीर्त्ति प्राप्त की जो सर्वदा के लिये ध्रुव है। इस ध्रुवाख्यान को शास्त्रीजी ने बड़ी चतुरता के साथ सात अंकों में पल्लवित कर प्रयोग को समाप्त किया है।

मोरवी के महाराज श्री ७ सर बाघजी बहादुर, जी० सी० आई० ई०, की सनातन धर्म में अतुलनीय श्रद्धा थी। वे शास्त्री शंकरलालजी का बहुत सम्मान करते थे। महाराज ने संवत् १९५९ चैत्र सुदी १३ शुक्रवार को तीर्थयात्रा प्रारंभ की और वे सिद्धपुर, मथुरा, हरद्वार, अयोध्या, काशी, गया, जगन्नाथपुरी, सेतु-बंध रामेश्वर, शिवकांची, विष्णुकांची, प्रयाग, चित्रकूट, उज्जैन और डाकोर होते हुए आषाढ़ सुदी ११ रविवार को मोरवी लौटे। यों यह यात्रा दो महीने और अट्ठाईस दिन में समाप्त हुई। श्रद्धालु महाराज ने स्थान स्थान पर स्नान, श्राद्ध, देवदर्शन, ब्राह्मणभोजन, गोदान, अन्नदान, अश्वदान, शय्यादान, अलंकारदान, वस्त्रदान किए और कन्याओं को नाना प्रकार से सहायता दी। तदनंतर सं० १९६३ में इन्होंने गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ और बदरीनाथ की, ६५० मील की, पैदल यात्रा की। इन दोनों यात्राओं में शास्त्री शंकरलालजी साथ रहे। यात्रा में भी विद्याव्यसनी शास्त्रीजी का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिखना-पढ़ना बराबर जारी रहता था। प्रथम यात्रा के प्रसंग में महाराज कोलंबो (लंका) पधारे थे और शास्त्रीजी भी वहाँ उनके साथ गए। राज्यवैद्य विश्वनाथ विट्ठलजी भी साथ थे। महाराज ने वहाँ एक दिन वैद्यराज से पूछा कि शास्त्रीजी आजकल क्या लिख रहे हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि वे एक राजकुमार का नाटक लिख रहे हैं। महाराज ने कहा कि जैसा सरल गुजराती भाषांतर तुमने इनके सावित्री नाटक का किया है वैसा ही इस पुस्तक का, जो इस समय शास्त्रीजी लिख रहे हैं, करना। वैद्यजी ने महाराज के आज्ञानुसार "भद्रायुर्विजय" नाटक का गुजराती अनुवाद किया किंतु अवकाश की संकीर्णता से यह वि० सं० १९७२ में जाकर प्रकाशित हुआ। संस्कृत का मूल नाटक अभी तक नहीं छपा है।

स्कंदपुराण के ब्रह्मोत्तर खंड के दस से तेरह अध्याय तक भद्रायु राजकुमार की कथा लिखी हुई है। उसी के आधार पर इस नाटक की रचना की गई है। भद्रायु के पिता का नाम वज्र-बाहु और माता का नाम सुमति था। अपर माताओं में कुमति मुख्य थी जो सुकुमार कुमार तथा उसकी मान्यमाता को नाना प्रकार से दुःख दिया करती थी परंतु शिवयोगी ऋषभ उनकी रक्षा करता था। उस योगी ने भद्रायु का विवाह निषध देश के राजा चंद्रांगद की पुत्री कीर्त्तिमाला से करवाया और अंत में राज्य दिलाया। इस कथा का आध्यात्मिक अर्थ भी है। दशार्ण देश का राजा वज्र-बाहु वस्तुतः जीवात्मा है। सुबुद्धि और कुबुद्धि उसकी स्त्रियाँ हैं। सुमति का पुत्र भद्रायु अर्थात् उत्तम जीवन है। कुमति का पुत्र महा-मय अर्थात् महारोग है। कुमति सर्वदा महामय को प्रोत्साहित कर भद्रायु का नाश करने की चेष्टा करती रहती है परंतु सुमति का पुत्र भद्रायु गुरुकृपा तथा ईश्वर-भक्ति के प्रबल बल के कारण कभी पराभव नहीं प्राप्त करता और सत्कीर्त्तिरूपी अर्धांगिनी को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त कर विजयी हो अपने पिता को आनंदमग्न करता है। इस नाटक में विनय, विवेक, आचार, विचार, ईश्वर-भक्ति, कुलीन सेवकों को सेवा के फल की प्राप्ति तथा उत्तम सेवक से स्वामी को लाभ इत्यादि विषयों का सुंदर निदर्शन कराया गया है।

शास्त्रीजी की प्रौढ़ लेखनी से वृद्धावस्था में लिखा हुआ विशेष महत्त्वपूर्ण "श्रीकृष्णचंद्राभ्युदयम्" नाटक है। इनकी अनेक पुस्तकों का गुजराती भाषा में अनुवाद किया गया, जिनका परिचय हम यथास्थान देते आए हैं, परंतु इस ग्रंथ पर महामहोपाध्याय हाथीभाई शास्त्री जैसे विद्वद्रत्न ने संस्कृत भाषा में नानाशास्त्रप्रमाणोपेत "ज्योत्स्ना" नाम की टीका लिखी जिसके द्वारा साधारण कोटि के पाठकों को शास्त्रीजी की मौलिक रचना में शास्त्रीय महत्त्व का असुलभ दर्शन अति सुलभ हो गया है और कई ऐसी समस्याएँ, जिनके समझने में पंडितपुरंदर-मन्यमान भी उलझे रहते हैं, बहुत सरल रूप से सुलझा दी गई हैं। यह नाटक वि० सं० १९७३ में, अर्थात् उसी वर्ष जिस वर्ष इसके रचयिता का कैलास-प्रस्थान हुआ, छपकर प्रकाशित हुआ। इस नाटक में पाँच अंक हैं। इसमें सन्निहित कथावस्तु का सार यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका में राज्य कर रहे थे। उनके बहुत सी रानियाँ थीं परंतु संतान एक से भी नहीं हुई। एक दिन वे, बिना किसी से कुछ कहे-सुने, बहुत सबेरे उठकर कहीं चले गए। रानियाँ अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार उनके जाने के स्थान का अनुमान करने लगीं। दैव-संयोग से देवर्षि नारद भी उस अवसर पर वहाँ आ गए और वयोवृद्ध वसुदेवजी से भेंट हुई। उन्होंने पौत्र-मुख-मयंक-दर्शन की अद्भुत स्पृहालुता प्रकट की। पिता की प्रेरणा से संतान[1] के उद्देश्य से

---

(१) अनपत्यादिदोषेषु महामयभयेषु च।
आयुष्यवृद्धये चापि सद्यो जाप्यो न संशयः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिवार्चन करने के लिये परमेश्वर के अनन्य भक्त योगेश्वर श्रीकृष्ण बटुकाचल को प्रस्थान करते हैं। शंबर और दंतवक्र विघ्न उत्पन्न करते हैं परंतु अंत में हतोद्यम रहते हैं और श्रीकृष्ण को संतान-प्राप्ति का वरदान मिल जाता है।

यहाँ यह भी बतला देना अच्छा होगा कि इस नाटक के निर्माण का सूत्रपात किस प्रकार हुआ। एक बार नवानगर के नरेंद्र रणजीतसिंहजी और मोरवी के महाराज प्रवास से लौटते हुए वीरम गाँव में साथ हो गए और रेल में बाँकानेर जंक्शन तक साथ साथ यात्रा करते रहे। मोरवी-नरेश का जीवन-क्रम विशेष रूप से प्राचीन शैली का था। उन्होंने विलायत-यात्रा नहीं की थी। किंतु जाम साहब अनेक बार विदेशों में भ्रमण कर आए थे। उनमें परस्पर कुछ धर्म-चर्चा छिड़ गई जिसमें श्री जाम साहब ने, जो भगवान् श्रीकृष्ण के वंश में जनमे, कहा कि मैं उन सदाशिव की उपासना करता हूँ जिनकी उपासना स्वयं श्रीकृष्ण किया करते थे। राजधानी में आकर मोरवी-नरेश ने श्री शंकरलाल शास्त्री को बुलाया और पूछा कि क्या श्रीकृष्ण शिव की उपासना करते थे। सांप्रदायिक संकुचितता से विमुक्त निखिलशास्त्रनिष्णात शास्त्रीजी ने कहा कि वे तो शिव के परम भक्त थे और अपने कथन की पुष्टि में महाभारत के एक प्रसंग का तत्काल उल्लेख कर दिया। फिर कुछ दिन बाद शास्त्रीजी जामनगर पधारे और श्री हाथीभाईजी शास्त्री से मिले। वहाँ पर उक्त महाराजाओं के वार्तालाप की चर्चा आई। तब श्री हाथीभाईजी ने कहा कि बहुत से लोग शास्त्रों के रहस्य से अनभिज्ञ होने के कारण शंका-समुद्र में निमग्न रहते हैं। अतः आप ऐसा प्रबंध क्यों न रचें जिसके द्वारा हरि-हर के भेद-भाव का अंधकार दूर हो जाय। शास्त्रीजी ने इस विषय पर एक रूपक लिखना स्वीकार किया परंतु इस शर्त पर कि श्री हाथी-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाईजी उस पर युक्ति और प्रमाणों से परिपुष्ट टीका लिखें। आशु-कवि ने अनेक कार्यों में व्यस्त होते हुए भी एक वर्ष में यह श्रीकृष्ण-चंद्राभ्युदय नामक रूपक रच डाला। आजकल हम लोग सहसा इस बात को भुला देते हैं कि मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम और कृष्ण के अवतीर्ण होने के पूर्व भी तो संसार में देवार्चन भगवद्भक्ति विद्यमान थी। शास्त्री हाथीभाईजी ने भी अपने मित्र से की हुई प्रतिज्ञा का बहुत अच्छा निर्वाह किया है। इस ग्रंथ की हस्त-लिखित प्रति का अवलोकन सरदार सर चीनूभाई माधवलाल बारोनट, सी० आई० ई० अहमदाबाद ने किया और सहर्ष इसकी सटीक छपाई का भार स्वीकार किया। परंतु उनकी ऐहिक लीला शीघ्र समाप्त हो गई। तदनंतर उनकी पातिव्रत-परायणा पत्नी सुलोचना तथा पुत्र गिरिजाप्रसादजी ने इसके मुद्रण में सहायता दी। इस ग्रंथ का विशेष रूप से परिचय नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग ७, संख्या ४ में दिया जा चुका है।

शास्त्रीजी के पिछले समय में रचे हुए ग्रंथों में एक "अमर-मार्कंडेयम्" नामक नाटक है जो उनके धर्मबंधु महामहोपाध्याय श्री हाथीभाईजी के सस्नेह प्रयत्न और परिश्रम से गुजराती अनुवाद सहित वि० संवत् १९८९ में प्रकाशित हो सका है। इस नाटक में पाँच अंक हैं, जिनमें यह दिखाया गया है कि संतान न होने से विमना-यमान विशालाक्षी अपने पति मृकंड मुनि के प्रति असंतोष के भाव प्रकट करती है, जिसके कारण वे सर्वस्व दान कर संतान-प्राप्ति के उद्देश्य से निर्जन वन में जाकर आशुतोष सदाशिव का समाराधन करते हैं। तपश्चर्य्या की फल-प्राप्ति के सुअवसर के अति निकट आने पर नारद मुनि, श्री शंकर को श्रीकृष्ण की रासलीला में बुलाने के लिये, आते हैं। इस प्रसंग का निमंत्रण भगवान् शंकर को श्रीकृष्ण के यहाँ से पहले भी प्राप्त हो चुका था। अब इधर मृकंड

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनि की चिरकालीन तीव्र तपस्या तथा उधर श्रीकृष्ण के निमंत्रण के उपरांत नारद मुनि जैसे दूत की संप्राप्ति से उनके यह निर्णय करने में कठिनाई होती है कि इन युगपत् प्राप्त दो अनिवार्य सदृश कार्यों में कौन सा तुरंत किया जाय। दोनों बातों का निर्वाह करने के लिये भगवान् शंकर नारद मुनि को मृकंड मुनि के समीप यह संदेश देकर भेजते हैं कि आपको पुत्र प्राप्त होगा किंतु मूर्ख पुत्र लेना स्वीकार हो तो दीर्घायु और सर्वज्ञ पुत्र चाहो तो स्वल्पायु मिलेगा, और आप वृंदावन पधारते हैं। दंपति सर्वज्ञ पुत्र प्राप्त करना अच्छा समझते हैं, अतः नारद मुनि "तथास्तु" कहकर वृंदावन प्रस्थान करते हैं। वहाँ पर आकर वे रासलीला के विषय में कुछ ऐसी शंकाएँ उठाते हैं जिनका समाधान कवि ने अत्यंत सुंदर शैली से करके श्रीकृष्ण के प्रति पर-स्त्री-गमन-दोष की शंका को समूल नष्ट कर दिया है। तदनंतर मृकंड के पुत्र मार्कंडेय का उपनयनपूर्वक उप-मन्यु के पास विद्याध्ययनार्थ भेजा जाना तथा कावेरी के तीर पर महा-मृत्युंजय का जप करना और शुद्धचरित बालक से व्याधि आदि मृत्यु के साधनों का परास्त होना दिखाया है। अंत में धर्मराज द्वारा कर्मविपाक की सूचना तथा अपने आचरण द्वारा मुनि-पुत्र का दीर्घायु होना प्रदर्शित कर सानंद नाटक की समाप्ति की है।

इस ग्रंथ के मुद्रण में वर्त्तमान लींबडी-नरेश महाराणा श्री दौलतसिंह वर्मा ने आर्थिक सहायता प्रदान की और यह उनके पौत्र सद्गत रामराजेंद्रसिंह के स्मारक ग्रंथमाला का प्रथम पुष्प होकर लोक-लोचन-गोचर हुआ है। इन्हीं महाराणा की प्रेरणा से गुर्जर-भाषाभिज्ञ जनों को कवि के कृति-परिशीलन-आनंद-अनु-भव के लिये गुजराती अनुवाद किया गया।

शास्त्रीजी नैसर्गिक कवि थे। उनकी अकृत्रिम कविता का दर्शन उनके रचे हुए दृश्य काव्यों से, जिनका संक्षिप्त परिचय दिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जा चुका है, जनता को हो चुका था परंतु इन कवि की विशेषता यह है कि ये गद्य-रचना में भी वैसे ही निपुण थे जैसे पद्य-रचना में। पाठक को बार बार बाण की कादंबरी की याद दिलानेवाला उन्होंने "चंद्रप्रभाचरितम्" नामक एक मौलिक उपन्यास लिखा। कथा का समुत्थान इस प्रकार किया गया है कि सुकुमारी कुमारी पार्वती विद्याभ्यास कर रही है। अनसूया, लोपामुद्रा आदि वृद्धा स्त्रियाँ पार्वती की कल्पना-शक्ति की परीक्षा करना चाहती हैं। अतः उसे अकस्मात् सभा में बुला लिया जाता है और एक तुरंत कल्पित रसीला और उपदेश-परिपूर्ण ऐसा भाषण—जो इतिहास में न हो, पुराण में वर्णित न हो, किसी कथानक में कथित न हो, किसी काव्य में निरूपित न हो—देने की आज्ञा दी जाती है। पार्वती इस आज्ञा को स्वीकार कर बिना किसी प्रकार के विलंब के तुरंत अभिनव अद्भुत कथा कहना प्रारंभ कर देती है। कथा में चंद्रप्रभा नाम की एक पतिव्रता सुलक्षणा राजकन्या का अद्भुत वृत्तांत है जिसमें व्यवहार, विनय, विवेक, न्याय, नीति, नम्रता, धैर्य्य और विशेष रूप से सद्विद्या के प्रतिपादन का महत्त्व दिखाया है। यह पुस्तक विशेष रूप से स्त्रियों के पढ़ने के योग्य है। ऐसा सुनने में आया है कि उक्त विचारों से—जो इस ग्रंथ में प्रदर्शित किए गए हैं—प्रभावित होकर मोरवी-नरेंद्र ने अपने राज्य में निःशुल्क शिक्षा का प्रचार प्रारंभ किया था। संस्कृत भाषा में गद्य के ग्रंथ इने-गिने हैं। शास्त्रीजी ने इस गद्य-ग्रंथ को लिखकर संस्कृत-साहित्य के भांडार में बड़ी अच्छी वृद्धि की है। इस ग्रंथ की प्रशंसा अनेक धुरंधर विद्वानों ने की है। इस ग्रंथ के गुजराती अनुवाद का गुजराती भाषा-भाषियों में बहुत प्रचार है। वि० सं० १९६७ के मगसिर महीने में श्रीरामकृष्ण शास्त्री ने इसका अवलोकन कर स्तुति-पद्य लिखे। श्री सुदामापुरी (पोरबंदर) के कैलासवासी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाराणा श्री भानसिंहजी वर्मा के नाम-स्मरण में यह ग्रंथ निर्णय-सागर प्रेस बंबई में छपकर, वि० सं० १९९८ के द्वितीय आषाढ़ की पूर्णिमा को, प्रकाशित हुआ। वस्तुतः यह इस ग्रंथ की द्वितीयावृत्ति है क्योंकि इसकी प्रस्तावना में लिखा है कि वि० सं० १९९२ में शास्त्रीजी पोरबंदर बुलाए गए। वहाँ पर उन्होंने अपने ग्रंथ भूपति भावसिंहजी को भेट किए परंतु उनमें चंद्रप्रभा की प्रति नहीं थी। महाराज ने उसे न देख उसके विषय में पूछा तो शास्त्रीजी ने उत्तर दिया कि उस ग्रंथ की तो अब एक भी प्रति नहीं रही। इस पर महाराज ने इस ग्रंथ को गुजराती भाषांतर सहित छपवा देने की आज्ञा अपने मंत्री को दी। फिर दो-तीन वर्ष तो इस विचार में बीत गए कि मुद्रण की अनुकूलता कहाँ होगी, कहाँ पर यह ग्रंथ शुद्ध और मनोज्ञ छप सकता है। इतने में भूपति भावसिंहजी का देवलोक हो गया। 'सविघ्नजालानि शुभानि कार्याण्येषा जनोक्तिर्न मृषेति मन्ये' के अनुसार यह कहीं वि० सं० १९९८ में जाकर प्रकाशित हो सका।

शास्त्रीजी ने "**विपन्मित्रं पत्रम्**" शीर्षक निबंध वि० सं० १९३२ के ज्येष्ठ मास में लिखकर समाप्त किया किंतु गुजराती अनुवाद "विपत्तिवेलानो मित्र" सहित यह वैशाख सुदी ५ संवत् १९५२ में जाकर छपा। जैसा कि नामकरण से विदित होता है, शास्त्रीजी ने पाठकों को विपत्ति में विकल अथवा किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ न होने और धैर्य धारण करने का तथा प्रतिकार-परायण होने का सदुपदेश दिया है। उन्होंने लिखा है—"स्वल्पज्ञताकल्पितः कश्चिन्मनोविकारो विपच्छब्देनोदीर्यते—यथायथा ज्ञायते ज्ञातव्यमधीयते ध्येतव्यमधिगम्यते चाधिगन्तव्यं तथातथा नास्ति विपच्छब्दवाच्यं स्वकीयज्ञानमंतरेण किमपि वस्त्विति निश्चीयते।" अपने विषय को पल्लवित करते हुए उन्होंने प्रसंगवश रामायण, महाभारत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के कई पात्रों के अतिरिक्त नल, दुष्यंत, हरिश्चंद्र, दौहित, चंद्रापीड, ऋतुध्वज, कंदर्पकेतु, पुरु, बलि, अलर्क, दत्तात्रेय, जमदग्नि, अगस्त्य, शृंग, गौतम, जैमिनि, पतंजलि, पाणिनि, वररुचि, चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, शंकराचार्य्य, भास्कराचार्य्य, वराहमिहिर और कवियों में अमर कालिदास, गुणाढ्य, चाणक्य, जयदेव, त्रिविक्रम, दंडी, देवेश्वर, धावक, बाण, भर्तृहरि, भवभूति, भारवि, भास, भोज, मयूर, मल्लिनाथ, महेंद्रपाल, माघ, मुरारि, राजशेखर, सुबंधु, श्रीहर्ष, और स्त्रियों में अरुंधती, उर्वशी, तारा, दमयंती, द्रौपदी, मदालसा, वासवदत्ता, सत्यवती, सीता, सावित्री, शकुंतला आदि का उल्लेख किया है। यहीं तक नहीं, प्लेटो, सेनिका और लार्ड बेकन के मत का भी समुल्लेख किया है। इस लेख से शास्त्रीजी की अति विस्तृत अध्ययन-सीमा का स्थूल दर्शन होता है।

इस समय नवानगर के जाम साहब श्रीमंत विभाजी महाराज का स्वर्गवास हो चुका था, अतः यह पुस्तक शास्त्रीजी ने उनके पवित्र नाम के स्मरणार्थ तथा उनके विरह-विधुर राजवैद्य करुणाशंकर अपरनाम झंडु विट्ठलजी को शांति-प्रदानार्थ अर्पण की। उन्होंने "महेश्वप्राणप्रिया" नाम की एक कथा भी लिखी थी परंतु वह अद्यावधि मुद्रित नहीं हो पाई है। संस्कृत भाषा में उनके दो और निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। एक है "विद्वत्कृत्यविवेक" जिसके साथ "शिक्षककृत्यविवेक" भी गुजराती अनुवाद सहित छपा है। इसमें विद्या के गौरव को व्यक्त करते हुए बालक-बालिकाओं को कैसे पढ़ाना चाहिए इस विषय का संस्कृत-गद्य में बड़ा मनोरंजक निर्देश किया गया है। शास्त्रीजी यह तो मानते थे कि "लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणाः, तस्मात् पुत्रश्च शिष्यश्च ताडयेन्न तु लालयेत्"; परंतु वे कठोर ताड़ना के बहुत विरोधी थे। पहले इस देश में ही नहीं, अन्य देशों में भी बालकों को कठोर दंड देने की कुप्रथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रचलित थी जिसका फल यह होता था कि शिष्य गुरु के समीप जाते समय अत्यंत भयभीत होता था। पाठशाला जाना उसे कारागृह जाने से भी अधिक अप्रिय लगता था क्योंकि उन दिनों गुरुजनों का नीतिक्रम यह था कि "Spare the rod and spoil the child"। परंतु अनुभव ने यह बतलाया कि "Apply the rod and spoil the child." शास्त्रीजी का उपदेश यह था कि शिक्षकों को यह प्रयत्न करना चाहिए कि बाल-कल्पपादप म्लान न हो, नीरस न हो, दुर्जन-ज्वाला-जाल से कवलित न हो, पामर-नर-परिचय से पीड़ित न हो और बालाध्ययन-शाला-पारिजात-उपवन सदा हरा-भरा बना रहे। उनके साथ स्नेहार्द्र दृष्टि से व्यवहार करना चाहिए और पठन-पाठन की शैली चित्ताकर्षक बनानी चाहिए।

शास्त्रीजी का "सेव्यसेवकधर्म" शीर्षक एक और निबंध है। वह भी गुजराती अनुवाद सहित छपा है। उसमें माता-पिता तथा पुत्र, गुरु और शिष्य, पति और पत्नी, स्वामी और सेवक को परस्पर किस प्रकार व्यवहार में धर्माचरण करना चाहिए और सर्व-सेव्य परमेश्वर की भक्ति प्राप्त करने की क्या सुगम रीति है इत्यादि विषयों पर सदुपदेश किया गया है।

इन निबंधों के पारायण से ऐसी अनुमति होती है कि श्री शंकर-लालजी शास्त्री इस देश के Samuel Smiles थे। लोकोपकारक सामयिक उपदेश-परिपूर्ण ग्रंथ संस्कृत-गद्य में लिखने का जो श्रम इन्होंने किया उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

जैसा कि हम प्रारंभ में लिख चुके हैं, शंकरलालजी की बचपन से ही संस्कृत भाषा के ऊपर स्वाभाविक प्रीति थी। परिणाम-स्वरूप संस्कृत भाषा में ही उन्होंने अपने ग्रंथ लिखे; परंतु वे गुजराती भाषा के भी असाधारण पंडित थे। उनके रचे हुए ग्रंथों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो गुजराती अनुवाद हुए हैं उनके द्वारा गुजराती भाषा के साहित्य की पर्याप्त श्री-वृद्धि हुई है। सूरत में जो तृतीय गुजराती साहित्य-परिषद् की बैठक हुई उसके वे उपप्रधान चुने गए थे। गुजराती भाषा में जो इनकी कृति है वह **"अध्यात्म-रत्नावली** अथवा श्रीगुरुदत्तदत्त उपदेश-समुच्चय" है। यह वेदांत-विषयक ग्रंथ है। इसमें निम्नांकित शीर्षकों के २२ रत्न अथवा व्याख्यान समाविष्ट हैं—(१) भार्गव-प्रश्न, (२) विचार-माहात्म्य, (३) सत्संग-माहात्म्य, (४) सत्संग-फल, (५) बंधाख्यायिका, (६) श्रद्धा-प्रशंसा, (७) ईश्वर-स्वरूपनुं निरूपण, (८) संसार आख्यायिका विवरण, (९) हेमचूडनी विश्रांति, (१०) हेमचूडनी कृतार्थता, (११) जगत्तत्त्वनिरूपण, (१२) महासेनना मोहनो नाश, (१३) शोकनुं मिथ्यापणुं, (१४) भावनानुं बल, (१५) आत्म-स्वरूप, (१६) अष्टावक्रने जनके आपेलो उपदेश, (१७) समाधि अने ज्ञान, (१८) मोक्ष वगेरेनुं स्वरूप, (१९) ज्ञाननुं मूल साधन, ज्ञानिनी स्थिति अने पुरुषापराध, (२०) विद्यागीता, (२१) ज्ञाननुं मुख्य साधन अने लक्षण तथा शास्त्रतत्त्व, (२२) ज्ञानिओनी चेष्टा अने ज्ञानक्रियानुं तत्त्व।

इस ग्रंथ के साथ श्री जयकृष्ण जीवनरामजी तथा श्री सेठ पोपट-भाई मोतीचंदजी के संक्षिप्त जीवन-वृत्तांत तथा शास्त्रीजी के रचे हुए श्रीमद्विश्वविद्येश्वरस्तोत्र और श्रीगुरुपादुकास्तुति भी छपी है। यह ग्रंथ १ मई सन् १९०८ ई० को प्रकाशित हुआ और कीर्तिकायवशिष्ठ पुण्यश्लोक ब्रह्मानंद सरस्वती श्री जयकृष्ण जीवन-रामजी की पुण्यस्मृति में अर्पण किया गया।

शास्त्रीजी की अंतिम रचना **"श्रीबालाचरितम्"** नामक महाकाव्य है। गुजरात में बाला अंबिका की बहुत मानता है। शास्त्रीजी ने इस ग्रंथ में मातेश्वरी बालांबिका का ही विस्तृत चरित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्रित किया है। इस काव्य में २१ सर्ग हैं जिनमें कुल मिलाकर ११८३ श्लोक हैं।

कथा इस प्रकार चलाई है कि एक बार बाला क्षेत्र में, जहाँ महामानस सर है, मरु देश का राजा मृगया के प्रसंग में चला आया और दैवयोग से गुर्जर देश का राजा भी उस समय वहाँ आया। दोनों में बहुत स्नेह हो गया। बिदा होते समय एकांत में गुर्जरेश ने कहा कि मेरी सहधर्मिणी गर्भवती है और मैंने सुना है कि आपकी रानी भी सगर्भा है। यदि मेरे पुत्री हुई और आपके पुत्र, तो मैं अपनी पुत्री का आपके पुत्र के साथ विवाह करूँगा और यदि इसके विपरीत हुआ तो आशा है आप अपनी कन्या मेरे कुमार को देंगे। ये स्नेहार्द्र वचन सुन मरु-मही-महेंद्र विनय से नम्रमुख हो गया और उसके मंत्री विनयसागर ने स्वीकृति के वचन उच्चारण किए। (१ सर्ग)

तत्पश्चात् गुर्जरेश के कन्या हुई जिसका नाम "चंद्रप्रभा" रखा। दैवसंयोग से मरु-महीपति के भी कन्या हुई किंतु उसने पुत्र के होने की घोषणा कर उसका "चंद्रहास" नाम रखा और कालांतर में कपट से गुर्जरेश की कन्या को ब्याह लाया। (२ सर्ग) कुछ समय बीतने पर इस छल का पता चंद्रप्रभा को लग गया किंतु वह अत्यंत मौन रही। उसकी एक गुजराती सखी को भी, जिसका नाम प्रियंवदा था, धीरे धीरे इस कपट-प्रपंच का पता लगा और उसने गुर्जरेश से सब भेद खोल देने की ठान ली। (३ सर्ग) पतिव्रता रानी ने कहा कि मेरे पिता ने "यह तेरा प्राणनाथ है" ऐसा मुझे आदेश दिया। मैं तो उस आदेश को अटल रूप से मानती हूँ। क्या वृकासुर को ठगते समय मुरारी नारीरूप नहीं हुए? क्या प्राचीन काल में अंधे और कुष्ठी च्यवन को पति के रूप में प्राप्त कर सुकुमारी राजकुमारी ने संताप किया था? क्या सावित्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ने राज्यभ्रष्ट द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् को नहीं वरा ? क्या भोगवती ने सर्पाकृति क्रूर पति नहीं पाया ? क्या द्विजकुमारी विषकन्या ने राजयक्ष्मा से पीड़ित कौशिक के साथ विवाह नहीं किया ? तनिक सोच तो सही। तू यह छल मेरे पिता से कहेगी तो वे सेना लेकर इस देश पर चढ़ाई करेंगे जिससे मेरे श्वशुर की, पति की, पिता की और अंत में मेरी भी जीवनलीला क्षण भर में समाप्त हो जायगी। अतः जो हुआ सो हुआ, तू सब तज हर भज। (४ सर्ग) ऐसे वचनों से प्रभावित हो कोप त्याग प्रियंवदा अपनी स्वामिनी के कल्याण-मार्ग की प्राप्ति के निमित्त, अत्यंत श्रद्धा से, सदाशिवजी की आराधना करने लगी। शंकर की प्रेरणा से एक महामुनींद्र वहाँ आए और प्रियंवदा से कहने लगे कि तुम सृष्टि-क्रम के विरुद्ध उद्देश्य रखकर क्या शंकर की निरर्थक आराधना कर रही हो ? कहीं नारी से नर होना संभव है ? इस पर तपस्विनी ने उत्तर दिया कि प्राचीन काल में वैवस्वत मुनि की कन्या इला विष्णु के वर से पुरुष हो चुकी है और क्या आपको शिखंडी तथा सामवान्-सामवती की कथा का स्मरण नहीं है ? नियति भी शिव की आज्ञा के आश्रित है। प्रियंवदा की भक्ति की दृढ़ता से प्रसन्न हो उसने कहा कि दांपत्य-सुख-वृद्धि के लिये तुम्हारी सखी तथा उसके कृत्रिम पति को उमा का आश्रय लेना चाहिए। (५ सर्ग) तदनंतर वे गुरु से उपदेश ले मंत्र द्वारा बालांबिका का जप करने लगी। (६ सर्ग) उन्होंने एक बार गुरुजी से मंत्र की महिमा के संबंध में प्रश्न किया। उस प्रसंग में गुरु ने एक उपाख्यान कहा कि ध्रुवसंधि नामक राजा के मनोरमा और लीलावती नामक दो रानियाँ थीं। पहली से सुदर्शन और दूसरी से शत्रुजित् नाम के दो राजकुमार उत्पन्न हुए। मृगया के प्रसंग में राजा सिंह द्वारा मारा गया। इस दुर्घटना का समाचार पाते ही उसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोनों श्वशुर ससैन्य आकर अपने अपने नवासे को राज्यारूढ़ करने के लिये संग्राम करने लगे। दैवयोग से मनोरमा का पिता वीर-गति को प्राप्त हुआ और वह महिषी अपने प्राणप्रिय राज्याधिकारी पुत्र सुदर्शन को साथ ले तपोवन को चली गई। शत्रुजित् राज-सिंहासनारूढ़ हुआ किंतु इस कनिष्ठ कुमार के राज्याभिषेक के समय राजकुल-भक्त सौविदल्ल ने इस अनौचित्य पर आक्षेप किया। परंतु शत्रुजित् के नाना युधाजित् ने एक न मानी। उसने पुराने सेवक को देश-निकाला दे भरद्वाज का आश्रम घेर लिया और उनसे सुद-र्शन तथा उसकी माता को माँगा किंतु मुनि ने उसे बुरी तरह फट-कारा और वह अपना सा मुँह ले वापस लौटा। (७ सर्ग) राज-कुमार ने प्रेम-पूर्वक गुरु से विद्याध्ययन किया। वह हाथी, सिंह और हरिणों का शिकार किया करता था। उसकी माता ने मृगया के दोषों का उपदेश देते हुए उसे मृगया में अत्यासक्त होने से रोका। एक दिन उसने वन के सुदूर देश में एक सुकन्या देखी। वार्त्ता-लाप करते हुए उसने कहा कि काशी के राजा सुबाहु की शशिकला नाम्नी कन्या का स्वयंवर होनेवाला है। अनेक नरेंद्र और नरेंद्र-कुमार वहाँ जा रहे हैं। तुम भी वहाँ जाओ। वह राजकुमारी तुमको वर के रूप में स्वीकार करेगी। सुदर्शन अपनी दरिद्रावस्था के कारण इस महोत्सव में जाने से संकोच करने लगा किंतु उस कन्या ने, जो वस्तुतः बालांबिका थी, भरोसा दिलाया कि इस प्रसंग में तुमको दैवी सहायता मिलेगी। (८ सर्ग) इस प्रकार प्रोत्साहित होकर राजकुमार सुदर्शन काशी गया और एक उद्यान में ठहरा। वहाँ पर ढाल-तलवार धारण किए हुए एक पुरुष आकर बोला कि हम ससैन्य आपकी सेवा में, श्री बालांबिका की आज्ञा के अनुसार, उपस्थित हुए हैं। जो कुछ आप आदेश दें उसे निस्संकोच करने के लिये तैयार हैं। कुमार ने इस पुरुष के द्वारा अपने आगमन का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाचार काशी-नरेश के पास भेजा और सुबाहु ने उसका सत्कार-पूर्वक स्वयंवर महोत्सव में सम्मिलित होना स्वीकार किया। प्रातः-काल होते ही राजकुमारी शशिकला ने अपनी माता से कहा कि स्वप्न द्वारा बाला देवी ने मुझे सुदर्शन से विवाह करने की आज्ञा दी है। उसकी माता ने यह संदेश राजा के कानों तक पहुँचाया। राजा ने कुमार की योग्यता तथा कुलीनता और सर्वोपरि दैवी प्रेरणा का विचार कर अपनी पुत्री का विवाह सुदर्शन से ही कर देने के निश्चय की घोषणा की, जिससे युधाजित् आदि राजा बहुत अप्रसन्न हुए और युद्ध करने लगे। किंतु बाला की सहायता से युधा-जित् मारा गया और सुदर्शन राजा बन अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ सानंद अपने पिता का राज्य भोगने लगा। (६ सर्ग)

मारवाड़ के राजा के कपट-प्रबंध का पता धीरे धीरे गुर्जरेश्वर के कानों तक पहुँच गया। उसने अपने जामाता को निमंत्रित किया। वह चंद्रप्रभा तथा अपने प्रिय मित्र कुमुद को साथ ले ससैन्य आया। तदनंतर एक दिन राजा ने अपने मंत्री नयसागर द्वारा चंद्रहास को सहभोज में आमंत्रित किया। इसका हृदय अंदर से बहुत काँपता था क्योंकि यह कन्या थी और कपट से कुमार-होना प्रसिद्ध हो रहा था। अस्तु, नियत समय पर वह ससैन्य कुमुद को साथ ले राजमहल में पहुँचा। वहाँ, जैसा कि इन्होंने पहले परामर्श कर लिया था, कुमुद ने हल्ला मचवा दिया कि शत्रु की सेना ने नगर घेर लिया है और बड़ी मार-काट हो रही है। प्रजा त्राहि त्राहि कर रही है। इस भयंकर कोलाहल ने रंग में भंग कर दिया। कुमार यह कहता हुआ कि मेरे होते हुए कौन मेरे गुरुजन का अपमान कर सकता है तुरंत घोड़े पर चढ़-कर नगर से बाहर चला गया। चलते चलते उसने एक सुंदर सरोवर देखा। वहाँ तनिक विश्राम लेने को ठहरा। यह मन में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहने लगा कि ऐसे अपमानमय जीवन से क्या लाभ है—अच्छा हो जो यहाँ एकांत में इस सरोवर में डूब मरूँ। यों बाला का अंतिम ध्यान धर ज्योंही उसने डुबकी लगाई त्योंही वह पुरुष हो गया। उसके साथ की घोड़ी और कुतिया भी उस सरोवर के जल के प्रभाव से घोड़ा और कुत्ता हो गया। (१० सर्ग) तदनंतर कुमार ने बाला की बहुत स्तुति की और वहीं उसका अपनी स्त्री, श्वशुर और मित्र से सम्मेलन हुआ। (११ से १३ सर्ग) वह फिर अपनी ससुराल गया और दो-एक दिन आनंदपूर्वक निवास कर मरुदेश को रवाना हुआ। चिरप्रवासवासी पुत्र को पाकर पिता बहुत प्रसन्न हुआ। कुमार गुरु के पास गया और कहने लगा कि मेरा मन अंबिका के आराधन में इतना लग गया है कि अब राज-काज के प्रति मेरी तनिक भी प्रीति नहीं रही। गुरु ने ऐसा वैराग्यवान् होने से रोका और उसे बालांबिका का, जिसके प्रसाद से उसे यह अतुलित और अलौकिक कृतार्थता हुई, एक अच्छा देवालय बनवा देने का आदेश दिया। (१४, १५ सर्ग) तदनंतर कुमुद की देख-रेख में वह मंदिर बनवाया गया और उसमें गुरु की अनुमति से जैसे शिव-लिंग पारद का सर्वोत्तम होता है वैसे ही अंबा की सर्वोत्तम अभ्रक की प्रतिमा विराजमान की गई। चंद्रहास ने गुरु से बालाक्षेत्र-माहात्म्य वर्णन करने की प्रार्थना की। इस पर गुरु ने रामाख्यान के प्रसंग में सीता द्वारा पुष्कर-द्वीप-निवासी सहस्रास्य रावण का वध किया जाना बताया। यह सफलता कालिका द्वारा हुई जो पश्चात् एक हाथ में वीणा, एक में पुस्तक, एक अभय और एक वरद हस्त धारण कर आठ वर्ष की सुकन्या के रूप में प्रकट हुई। और उसने सिद्धपत्तन (वर्तमान सिद्धपुर) के समीप मानसरोवर में अपना अनादिकाल से निवास होना बतलाया और यह भी कहा कि वहीं हाटकेश महेश बसते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। (१६, १७ सर्ग) एक दिन चंद्रप्रभा गुरु से बोली कि कृपया यह कहिए कि सीता ने राम का प्रभाव तो न्यून और अपना अधिक सिद्ध कर देने का साहस क्योंकर किया। गुरु ने उत्तर दिया कि वस्तुतः सीता आदि-प्रकृति है; उसके विलास से यह चराचर जगत् होता है। राम प्रकृति-संभव साक्षात् परम ज्योति हैं। राम और सीता में कोई भेद नहीं। शक्ति और शक्तीश्वर में कोई भेद नहीं। यह सुन वह संतुष्ट हुई और बालाक्षेत्र की और महिमा सुनने की इच्छा प्रकट की।

गुरु ने कहा कि गुजरात में एक दुर्भगा पोटा थी। उसके बाल्यकाल में ही उसकी माता का देवलोक हो गया। पिता ने जैसे-तैसे उसका पालन-पोषण किया किंतु वह भी जब कन्या की आयु १२ वर्ष की हुई असाध्य व्याधि से ग्रस्त हो गया। जीवन की कोई आशा न देख उसने कन्या को नाना सदुपदेश दिए और कहा कि मैं अवश्य एक-दो दिन में अंतिम साँस लेनेवाला हूँ। दुर्भाग्य से तुझको माता का वियोग हो ही चुका है; न तेरे कोई भाई है, न बहन, न कोई और रिश्तेदार। न जाने अब तेरी क्या दशा होगी। अच्छा हो यदि तू यहाँ से तीन योजन दूर जो क्षेत्र है वहाँ जाकर बाल अंबा का आश्रय ले। तदनंतर पिता का देहांत हो गया और कन्या ने उसके कथनानुसार बालांबा की शरण ली। (१८ सर्ग) पोटा को बाला की सेवा करते चार वर्ष बीत गए। उसने एक दिन एक नृपांगना को बालक सहित आए हुए देवी की अर्चा करते हुए देखा। वह बाँझ थी। बाला के प्रसाद से पुत्रवती हुई और अब सुवर्ण का पालना देवी के चढ़ा रही थी। कुमारी पोटा भी पुत्र-रत्न-प्राप्ति के लिये देवी की आराधना करने लगी और एक दिन स्वप्न में पति को पा गर्भवती हो गई। नौ मास पश्चात् वह गर्भ से बहुत पीड़ित हुई। अंबा ने उसकी व्यथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बालक की रक्षा की। पोटा ने जन्मांतर में भी अंबा के समीप रहने की इच्छा धारण की। इस आशय की पोटावेदी वहाँ समीप में विद्यमान है। (१९ सर्ग)

आश्विन मास के प्रथम दिवस मरु-महिपति अनेक मित्र तथा राजा-महाराजाओं के साथ वहाँ आया। मंदिर की विधिवत् प्रतिष्ठा हुई। राजा ने बाला के समीप रहने का संकल्प किया परंतु देवी ने कहा कि तुम राजधानी को जाओ। पौत्र-मुख-दर्शन कर फिर इस धर्माश्रम में आना। (२० सर्ग)

प्रारंभ में शास्त्रीजी ने यह काव्य केवल सात सर्गों का बनाया था और गुजराती भाषा में उसकी टीका करने के लिये पंडित प्राण-शंकरजी के पास भेजा। उन्होंने भाषांतर कर पोस्टाफिस द्वारा लौटाया परंतु पैकट मार्ग में खो गया। शास्त्रीजी ने इस दुर्घटना का सखेद वर्णन अपने मित्र हाथीभाईजी से किया। वे बोले कि देवी को वह अच्छा नहीं लगा। षोडशसर्गात्मक सुंदर नूतन काव्य रचिए ऐसी बाला की इच्छा प्रतीत होती है। उन्होंने तुरंत विस्तृत महाकाव्य की रचना प्रारंभ कर दी और १६ सर्ग समाप्त किए। किंतु उसमें पोटा का इतिहास नहीं आया था। उसे भी अपने मित्र की प्रेरणा से लिखकर २० सर्ग पूरे किए। २१वें सर्ग में अपने गुरु श्री केशवजी मुरारजी की जीवनी का परिचय देना आरंभ किया किंतु वे इस सर्ग में ३७ श्लोक ही लिख पाए थे कि उनका देहांत हो गया। शास्त्री हाथीभाईजी ने स्वयं ३७ श्लोकों में गुरु के शेष चरित[1] का संक्षिप्त रूप से सन्निवेश कर विक्रम संवत्

---

(१) श्रीमान् पंडित केशवजी मुरारजी का कुछ परिचय इस लेख के प्रारंभ में दिया जा चुका है। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। इनका जन्मस्थान जामनगर था। इन्होंने पंडित श्रीकृष्ण से पाणिनीय तंत्र, गौरीशंकर से काव्य, कोश, ताताचार्य से न्यायशास्त्र, टोकरानंदजी से वेदांत, गंगाधर से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९७३ पौष वदि तृतीया को इस महाकाव्य को समाप्त किया। यहाँ पर यह वतलाना भी आवश्यक है कि शास्त्रीजी पर उनके श्वशुर पंडित जयकृष्णजी[1] का प्रभाव भी नगण्य नहीं था। जय-

---

शुक्ल यजुर्वेद पढ़ा और जाम साहब श्री रणमल्लसिंह के सभापंडित बने। इन्होंने अनेक विद्यार्थियों को विद्या पढ़ाई। इनके मुख्य शिष्यों में कच्छ के श्री विश्वनाथ, थेलुभाई, वेचरजी, छगनलाल, भीमजी, काशीनाथ, भनाभाई, विश्वनाथ विट्ठलजी, मूलशंकर, प्राणशंकर, रावजी सदाशिव ओक, गोकुलदास, हीरजी, हाथीभाई, शंकरलालजी आदि हुए। काठियावाड़ में इनके शिष्यों की गणना नहीं—

यः कोपि देश इह शीलितपाणिनीयो
यश्चापि तार्किकवरः कविताचणो वा।
योऽपीह जैमिनिनये श्रुतिशेखरे वा
विद्वान् स एष सकलोपि तदीय शिष्यः॥

केशवजी ने पंचांगशोधन में काशी के श्री बापूदेव शास्त्री को बहुत सहायता दी। श्री बाळ शास्त्री, राजाराम, काशीनाथ, शिवकुमारादि प्रसिद्ध पंडित-पुरंदर इनका बहुत सम्मान करते थे। इन्होंने विष्णुयाग रुद्रयागादि कराए। इनका जन्म वि० सं० १८७६ में और कैलासवास १९३७ में हुआ।

(१) पंडित जयकृष्णजी यजुर्वेदीय माध्यंदिनी शाखाध्यायी मांडव्य-गोत्रोत्पन्न प्रतिष्ठित ब्राह्मण थे। इनके पूर्वजों ने पोरबंदर-नरेश के विष्णुयाग, महारुद्रयागादि कराकर अच्छी ख्याति पाई। इनके पिताजी के देहावसान के समय इनकी आयु १९ वर्ष की थी। पूर्वजन्म के संस्कार से सं० १९०४ में इनका अनायास वेदान्त-वागीश श्री रामबाबा से मिलना हुआ और उनसे इन्होंने पंचदशी आदि वेदांत के ग्रंथ पढ़े तथा वेदांत-विषयक सुप्रवचन की रीति सीखी। ये ऐसे व्याख्यानपटु हो गए थे कि इस कला द्वारा इन्होंने लोकोत्तर ख्याति पाई। अनेक श्रीमान् धनवान् रजवाड़ों में प्रतिष्ठा प्राप्त की तथा योगक्षेम की विपुल सामग्री भी एकत्र की और धार्मिक कृत्यों में लगाई। एक बार भावनगर में भगवद्गीता के दो श्लोकों की व्याख्या में इन्होंने १९ दिन लगा दिए और प्रतिदिन श्रोताओं के चित्त को समाकर्षित रखा। इन्होंने कई बार तीर्थ-यात्राएँ कीं। ये अस्खलित वेदांत-ग्रंथों की कथावार्त्ता किया करते थे। इन्हों ने शास्त्री शंकर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृष्णजी रामबाबा के, जिनका कुछ परिचय प्रारंभ में दे चुके हैं, अग्रगण्य शिष्य थे। वे वेदांत के प्रवीण पंडित थे। उनके प्रसंग से वेदांत में शास्त्रीजी की और भी अधिक अभिरुचि हुई। दर्शनशास्त्रों के संबंध में पंडित शंकरलालजी की लेखनी से अधिक न लिखे जाने का मुख्य कारण यही है कि संस्कृत भाषा में इन विषयों पर पहले से ही रचे हुए अत्यधिक ग्रंथ विद्यमान हैं। शास्त्रीजी के भाव ऐसे थे जैसे एक सच्चे सुधारक के होने चाहिएँ। अतः देशकालोपयोगी ग्रंथों की रचना में उन्होंने श्रम किया। वस्तुतः वे जैसे काव्य-साहित्य-अभ्यास-परायण थे वैसे ही दर्शनादि शास्त्रों में भी निपुण थे। स्वर्गवासी सर चीनूभाई माधवलाल, जो स्वयं बड़े विद्वान् थे, शंकरलालजी को अहमदाबाद में बुलाया करते थे और दर्शन-शास्त्रों पर शंका-समाधान किया करते थे। अन्य विद्वान् भी उनके निवास-स्थान पर आकर शास्त्रीजी के शुभागमन से लाभ उठाते थे। कभी कभी वेदांत के एक ही प्रसंग पर कई दिन तक चर्चा चलती रहती थी। वे अहमदाबाद की संस्कृत पाठशाला के परीक्षक भी रहे थे।

शास्त्रीजी ने वामनविजय और पार्वतीपरिणय[१] नामक नाटक भी रचे परंतु ये अभी तक अप्रकाशित ही हैं। इनके अति-

---

लालजी को वेदांत-प्रवचन-परायण रहने की विशेष रूप से प्रेरणा की। वि० सं० १९२९ में वे प्रसंगवश मोरबी पधारे और यह देखकर बड़े प्रसन्न हुए कि शास्त्रीजी अपनी प्रतिज्ञा का अनवरत पालन कर रहे हैं। जयकृष्णजी के चाचा मोनजी की पुत्री सूरजकुँवर का पाणिग्रहण जामनगर के भट्ट विट्ठलजी से हुआ था और उनसे श्री मंडु भट्ट, मणिशंकर, जटाशंकर, पोपटभाई और विश्वनाथ उत्पन्न हुए।

(१) बाण कवि का रचा हुआ भी "पार्वतीपरिणय"-शीर्षक एक नाटक है किंतु शास्त्रीजी की यह रचना उससे भिन्न है। सावित्रीचरित को उसके गुजराती अनुवादक ने पार्वतीपरिणय नाम के महानाटक का गर्भ नाटक बतलाया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रिक्त पाँच और भी ग्रंथ हैं अर्थात् **भ्रांतिभयभंजन, केशव-कृपालु-लहरी, पांचाली-चरित, प्रसन्नलोपामुद्रा** और **अरुंधति-विजय** जो लोक-लोचन-गोचर नहीं हो सके हैं। एक बार उन्होंने ऐसा संकल्प किया था कि वे अपने समस्त नाटकों को एक बड़े नाटक में पिरो दें और अपनी रची हुई कथाओं का एकीकरण कर कथासरित्सागर अथवा पंचतंत्र की भाँति का, निज निर्मित शैली का, एक नूतन ग्रंथ निर्माण कर दें। किंतु खेद का विषय है कि अनेक कारणवश वे ऐसा न कर सके।

एक और महत्त्वपूर्ण कार्य, जो शास्त्रीजी कर गए हैं, उनका **आह्निक** अर्थात् Diary है। इसमें उन्होंने अपने गुरु और मित्रों की जीवनियों के चित्त-संस्कार एवं स्मरणार्ह घटनाओं का समावेश किया है। इससे आठ-दस सज्जनों की जीवनी लिखने में महत्त्वपूर्ण सामग्री मिल सकती है। उन्होंने प्रारंभकाल में एक संस्कृत कोष भी तैयार किया था जिसमें संस्कृत शब्दों के अर्थ गुजराती भाषा में लिखे थे परंतु जिस रूप में वे उसे संपूर्ण करना चाहते थे, नहीं कर सके; अतः उसका मुद्रण नहीं कराया गया। उनकी स्फुट कविताओं की रचना के परिमाण का अनुमान करना कठिन है क्योंकि समस्या-पूर्त्ति, प्रशस्ति और स्तोत्रादि का कोई संग्रह विद्यमान नहीं है। ऐसे अवसर बहुत होते थे जब शास्त्रीजी से मानपत्र रचना के लिये प्रार्थनाएँ की जाती थीं। उन्होंने कच्छ-नरेश महाराजाधिराज मिरजा महाराव श्री खंगारजी बहादुर के सिंहासनासीन होने पर संवत् १९४१ (सन् १८८४ ई०) में एक चमत्कृत-कविता-कलाप-युक्त सम्मानपत्र भेट किया था। इस कृति में इतिहास और उपदेश से परिपूर्ण नाना प्रकार के १४९ श्लोक हैं। उस अवसर पर सुप्रसिद्ध पंडित गोवर्धन शर्मा (गट्टूलालजी) ने भी मानपत्र भेट किया था और ये दोनों एक पुस्तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के रूप में गुजराती अनुवाद सहित "**कच्छमहोदयः वा मान-पत्रम्**" नाम से प्रकाशित हो चुके हैं।

स्फुट कविताओं में उनकी **मेघ-प्रार्थना** सुंदर कविता है।

जब भूतपूर्व सम्राट् एडवर्ड सप्तम बहुत बीमार होकर स्वस्थ हुए थे और देश-देशांतरों में भगवान् से उनके स्वास्थ्य-लाभ के लिये प्रार्थनाएँ की गई थीं तथा स्वस्थ होने पर उत्सव मनाए गए थे उस अवसर पर इन्होंने एक हर्षावह कविता बनाई थी जिसकी रचना की विद्वानों ने बहुत प्रशंसा की थी। एक बार सुप्रसिद्ध विदुषी एनी बेसेंट, जिसको महामहोपाध्याय पंडित गंगाधर शास्त्री ने काशी में सन् १९०१ में "सर्वशुक्ला सरस्वती" कहा था, मोरवी पधारीं। उस समय उस विदुषी को शास्त्रीजी द्वारा रचा हुआ कवितावद्ध मानपत्र समर्पित किया गया था। ऐसी ऐसी प्रकीर्ण रचनाओं का योग प्रतिवर्ष बीस से न्यून नहीं होगा और उन्होंने अपनी आयु में लगभग ८०० प्रकीर्ण रचनाएँ की होंगी। ऐसा मानना अतिशयोक्ति नहीं प्रतीत होता।

ब्रिटिश सरकार ने शंकरलालजी की संस्कृत-साहित्य-निपुणता से प्रसन्न होकर सन् १९१४ ई० में "महामहोपाध्याय" की असु-लभ पदवी से सुशोभित किया। शास्त्रीजी को काठियावाड़ के बहुत से राजा-महाराजा सम्मानपूर्वक बुलाया करते थे और उनकी सादगी तथा उनके काव्य के माधुर्य और उनके आदेश तथा उप-देशों का रसास्वादन किया करते थे। जैसा कि लिख आए हैं, मोरवी के स्वर्गीय श्री वाघजी महाराज के साथ उन्होंने सारे भारतवर्ष में भ्रमण किया और चारों धामों की यात्रा की तथा लंका (Ceylon) भी गए। मोरवी की आर्य-हितैषिणी सभा ने उनको चाँदी के संपुट में मानपत्र समर्पित किया था। भारतधर्म-महामंडल ने उनको "कवि-शिरोमणि" की पदवी प्रदान की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्ष्मी और सरस्वती एक जगह नहीं रहतीं—इनका परस्पर वैर है, ऐसी जगत्प्रसिद्ध लोकोक्ति है। देखने में भी यही आया है कि प्राय: विद्वान् धनवान् नहीं होते। ऐसे इने-गिने मनुष्य हुए हैं और हैं जो विद्वान् भी हैं और धनवान् भी अर्थात् जिनकी प्रसिद्धि संसार में विद्या से भी है और धन से भी। विद्यानुरागी की वृत्तियाँ कुछ और ही प्रकार की होती हैं। यदि अति साधारण रूप से भी उसकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो जाय तो वह संतुष्ट ही रहता है। शास्त्रीजी भी ऐसी मनोवृत्तिवाले व्यक्ति थे। यद्यपि उनका हाथ बहुधा तंग रहा परंतु दान देने में वे मुक्तहस्त रहे। परिणाम-स्वरूप उनको प्राय: ऋण हो जाता था जिसको उनके प्रशंसक तथा मित्र किसी न किसी प्रकार बेबाक कर देते थे। एक बार वे बंबई में निमंत्रित हुए और वहाँ शतावधान कर उन्होंने श्रोतृवर्ग का चित्त चमत्कृत किया। गुणग्राहकों ने उनको एक थैली भेंट की किंतु इन विद्याव्यसनी ने उस द्रव्य को अपने एक ग्रंथ के छपवाने में लगा दिया। वे बहुत क्षमा-शील, शांत, निर्वैर, उदार और दयालु थे। एक दिवस जब वे अपने इष्टदेव सदाशिव शंभु के समर्चन में संलग्न थे, एक दुष्ट भिक्षुक वहाँ आया और उसने किसी व्यक्ति को सचेत न देख चुपके से उनका जलपात्र चुरा लिया। वस्तुत: यह घटना बुद्धिमंत, धैर्यवंत, विवेकवंत तथा विचारवंत शास्त्रीजी के ध्यान से परे नहीं रही; किंतु उन्होंने उस समय न तो कुछ कहा और न किया—देवाराधन में यथावत् तत्पर रहे। तीन-चार दिन के बाद वह फिर आया। शास्त्रीजी ने उसका सप्रेम स्वागत किया और घर पर भोजन कराया। तदनंतर उससे कहा कि हमारे घर में से जिस वस्तु की तुमको आवश्यकता हो उसे नि:संकोच ले सकते हो। शास्त्रीजी की ऐसी उदारात्मता देख वह पामर अपने पूर्व कुकर्म पर अत्यंत लज्जित हुआ और उसी दिन से वह अपने को ऐसे नीच कर्म से रोक सदाचार से जीवन व्यतीत करने लगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्रीजी भगवान् शंकर के परमभक्त थे और अपने इष्टदेव का नाम प्रायः "राजराजेश्वर" संज्ञा से लिया करते थे। उनका भक्ति-भाव बहुत उच्च कोटि का था। उनके ग्रंथों का पारायण करते हुए पाठक को यह प्रतीत होगा कि यदि भगवान् की स्तुति का तनिक भी प्रसंग उपस्थित हो गया तो शास्त्रीजी की लेखनी वहीं रुक जाती है और वह भगवद्भक्ति-भाव-पूर्ण मंजुल मधुर मनोहर पंक्तियों की पंक्तियाँ लिखकर कठिनता से आगे बढ़ती है मानो उधार लिए शब्दों में पताका के समान उसका शरीर आगे सरकता है परंतु मन पीछे। शास्त्रीजी की भगवद्भक्ति में एक विशेषता है और वह यह कि वे भगवान् शंकर और विष्णु के अभेद भाव से उपासक थे। उनके काव्यों में जैसी उत्तमता से शिव-भक्ति के प्रसंग में शिव के प्रति आदर और अनुरागपूर्ण पंक्तियों के दर्शन होते हैं वैसे ही विष्णु के प्रसंग में भी। उन्होंने अमरमार्कंडेय नाटक में वृंदावन-विहारी श्रीकृष्ण की रासलीला में शंकर के बुलाए जाने का प्रसंग उपस्थित किया है। उनको बुलाने के लिये नारदमुनि कैलास पहुँचते हैं। शंकर का मृकंड मुनि की चिंता में तपोवन जाना निश्चित हो चुका है परंतु उसी समय श्रीकृष्णचंद्र-कर-कमल-लिखित पत्रिका मिलती है जिसमें वे लिखते हैं कि—

"राकाऽराकाऽशरदपि शरच्चन्द्रिकाऽचन्द्रिका सा
राधाऽराधा परशिवतवाऽसन्निधौ श्रीपते मे।
रासोल्लासः प्रभवति तदा साम्बशम्भो यदा त्वं
देव्या सार्द्धं भवति शिवया रत्नसिंहासनस्थः॥"

आशय—भगवन्! इस उत्सव में यदि पार्वतीजी सहित आपके दर्शन नहीं हुए तो मेरे लिये वह पूर्णिमा पूर्णिमा नहीं, वह शरद् शरद् नहीं, वह चंद्रिका चंद्रिका नहीं, यहाँ तक कि वह राधा राधा नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्त के वश में होनेवाले भगवान् शंकर किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ से हो जाते हैं। निदान अपने अनिवार्य कार्य को नारद के सिपुर्द कर देते हैं। वे पार्वती से कहते हैं कि—

नृत्यं विधातुं न मम प्रहर्षः श्रीकृष्णचन्द्रेण विना कदाचित्।
यथा तथा देवि! शिवे! विना मां रासं विधातुं नहि तस्य हर्षः॥

आशय—देवी! जैसे मुझे तांडव-नृत्य-महोत्सव में बिना श्रीकृष्ण के हर्ष नहीं आता वैसे ही मेरे बिना उनको रास-महोत्सव फीका लगता है।

नारदजी उपर्युक्त वार्तालाप सुन कहते हैं कि—

परस्परान्तरात्मानौ माधवो माधवौ युवाम्।
कः कां कर्त्तुं क्रियां शक्तोऽसन्निधौ स्वान्तरात्मनः॥

आशय—हे हरिहर! आप परस्पर अन्योन्य अंतरात्मा हो। भला निज आत्मा के बिना कोई क्या क्रिया कर सकता है?

ध्रुवाभ्युदय के सप्तम अंक में शास्त्रीजी ने लिखा है—

तुष्टे रमापतौ तुष्ट उमापतिरयत्नतः।
तुष्टे चोमापतौ तुष्टो रमापतिरयत्नतः॥ इत्यागमसिद्धम्।

ऐसे ही शिव-विष्णु के परस्पर प्रणय-वाक्यों में उन्होंने अभेद-भाव प्रदर्शित किया है। श्रीकृष्णचंद्राभ्युदय नाटक में भी कवि ने इस सिद्धांत का पूर्ण समर्थन किया है। शास्त्रीजी के मुख से क्षण क्षण में शिव शिव निकलता था। यदि उनके प्रति कोई कुवाच्य भी कह देता तो भी वे उसके प्रति शिव शिव ही कहते। सर्वलोकशिवाभिलाषी, क्षमाशील, शांतमूर्त्ति शंकरलाल के ललित लेखों में शिव और विष्णु के सहृदय भक्तों को समान रूप से शांति और संतोषप्रद पुनीत पंक्तियों के दर्शन हों तो आश्चर्य ही क्या है। भला जिसके गुरु श्री केशव हों और पिता श्री महेश हों वह परमगुरु और पितृभक्त शिव और विष्णु को अभेद-भाव से क्यों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न मानेगा? यह कल्पना नहीं किंतु सत्य है। विद्वत्कृत्यविवेक के मंगलाचरण में वे स्वयं लिखते हैं—

सद्गुरू विश्ववंद्यश्रीविद्यापीयूषवर्षिणौ।
नमाम्येकस्वरूपौ तौ श्रीकेशवमहेश्वरौ[१] ।।

ईश्वर-भक्ति के साथ साथ शास्त्रीजी की गुरुभक्ति और पितृ-भक्ति भी अलौकिक थी। उन्होंने अपनी प्रत्येक पुस्तक में अपने पिता और गुरु का परम भक्ति से अभिवादन किया है। उन्होंने अपने पूज्य पिता और श्रद्धेय गुरु का श्राद्ध गया में जाकर किया। उन्होंने अपने आह्निक में अपने गुरु की संक्षिप्त जीवनी भी लिख रखी है परंतु वह अभी तक अप्रकाशित है।

शास्त्रीजी के विषय में जो अब तक लिखा जा चुका है उससे यह सिद्ध है कि वे एक उच्च कोटि के कवि-कोविद और लेखक थे। वे धर्मनिष्ठ, उदारचित्त और त्यागशील व्यक्ति थे। छोटे-बड़े सबसे असंकीर्ण रूप से मिलने, देश-देशांतर में विस्तृत यात्रा करने तथा दीर्घायु होने के कारण वे देश-काल से अभिज्ञ थे। वे परम संतोषी, धीर, गंभीर और निर्वैर थे। वे पर-दुःख-दुखी और पर-सुख-सुखी थे। वे अकारण स्निग्ध थे। उनकी विद्या लोक में ज्ञान-विस्तार के लिये, धन दान के लिये और शक्ति दुर्बलों को सहायता देने के लिये थी। उनमें चलतापुरजापन और जमानासाजी नहीं थी। वे कविता कर सकते थे परंतु ढोंग की रचना नहीं कर सकते थे। पैसा ऐंठना बिलकुल नहीं जानते थे। उन्होंने पाठशालाओं के लिये आज-

---

(१) श्री पुरुषोत्तम प्रभु का चरित और उसके बाद ग्रंथ की भूमिका में शास्त्रीजी के विषय में कुछ सांप्रदायिक संकीर्णता का जो उल्लेख किया गया है वह असंगत है। वे शिव और विष्णु के अभेद-भाव से उपासक थे ऐसा उनकी लिखी हुई अनेक पंक्तियों से प्रमाणित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल की सी पाठ्य पुस्तकें अथवा पाठ्य पुस्तकों पर टीका-टिप्पणियाँ बनाकर अर्थलाभोन्मुख श्रम नहीं किया किंतु निगमागम-निरूपित उच्च आदर्श रख प्राचीन शैली के किंतु वर्तमान काल में अतिहितवह ग्रंथ निर्माण किए। यदि ग्रंथ के मुद्रण-व्यय में उनको आर्थिक सहायता मिल गई तो परम संतोष हो गया और कृतज्ञशीलता के कारण उस दाता के यावज्जीवन ऋणी हो गए। ग्रंथों का मूल्य अति स्वल्प रखा और वह स्वल्प मूल्य की प्राप्ति भी उनको कहाँ होती थी; क्योंकि जो विद्वान् और विद्या-प्रेमी होता उसको तो वे सम्मानपूर्वक बिना मूल्य ग्रंथ भेंट कर देते। इतर जन जेब से पैसा निकालने क्यों लगे? यदि कोई तार और पोस्ट कार्ड लिखाने-पढ़ाने बाजार में जाता तो दो-चार आने दिए बिना काम नहीं चलता किंतु शास्त्रीजी से स्वागत, बधाई अथवा निवापांजलि लिख देने की फीस प्रार्थना मात्र थी। वे पुरुषोत्तम प्रणिपात मात्र के वश थे। शास्त्रीजी की ग्रंथ-निर्माण-शैली में उनके स्वभाव का अच्छा दर्शन होता है। उन्होंने जो नाटक लिखे हैं वे लंबे अधिक हैं, अत: उनका पूर्ण रूप से अभिनय नहीं हो सकता। रंगशाला में अभिनेय नाटक (stage plays) छोटे होने चाहिएँ जिनके अभिनय में इतना समय लगे कि दर्शक आसानी से बैठे रह सकें। महाकवि भास का "चारुदत्त" उसके इतर नाटकों के समान नेपथ्यानुकूल नाटक है, किंतु शूद्रक का "मृच्छकटिक" वैसा नहीं। संस्कृत में महाकवियों के लिखे हुए ऐसे बहुत से नाटक हैं जिनमें पद्यों की बहुत भरमार है और प्रकरण का विस्तार अधिक है; परंतु उनके अभिनय करने में कठिनाई के रहते हुए भी उनका परिशीलन विद्वानों के मार्मिक हृदय को आनंद दिए बिना नहीं रहता क्योंकि पाठक के सामने ग्रंथ के पढ़ते पढ़ते एक विशेष प्रकार का आनंदोल्लास होने लगता है। शास्त्रीजी के रचे नाटकों में उपदेश और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्ति का बहुत समावेश है। उनको स्त्री, पुरुष, कन्या, कुमारी, बाल, वृद्ध समान रूप से निःसंकोच पढ़ सकते हैं। विदूषक के होने पर भी मंद मुसक्यान प्राप्त कर लेने के स्थलों का अभाव नहीं है। इन्होंने अपने नाटकों में प्राकृत भाषा का प्रयोग नहीं किया है। स्त्रियों और सेवकों के भाषण संस्कृत भाषा में ही लिखे हैं। गार्हस्थ्य जीवन की कामना और भावनाओं का चित्रण स्थान स्थान पर बहुत रोचक मिलता है। उदाहरण के लिये देखिए—एक बार नारद मुनि श्रीकृष्ण के पास द्वारका पधारते हैं। वे वयोवृद्ध वसुदेवजी से मिलते हैं और कृष्ण की विभव-महिमा की चर्चा करते हैं किंतु वसुदेवजी दीर्घ निःश्वास लेकर कहते हैं—"ओह, इससे क्या ?" मुनिवर कहते हैं कि आपके पुत्र के पास ऐसी अपरिमित विभव-विभूति विद्यमान है जैसी इंद्र, कुबेर, वरुण और यम के पास भी नहीं, फिर भी आपके मन को संतोष नहीं होता। बात यह है कि सब कुछ विद्यमान है परंतु आठ रानियों के होते हुए भी श्रीकृष्ण को संतान-लाभ नहीं हुआ। पितृ-चरणों में पौत्र-मुख-चंद्र-दर्शन-स्पृहालुता अति उत्कट है। उसकी अप्राप्ति में सब कुछ प्राप्त फीका लगता है। अतः वे कहते हैं—मान्य मुनींद्र !

नवरत्नमयानि मन्दिराणि प्रमदारत्नशतावृतानि चेत् स्युः ।
अतुला विभवोच्चयाश्च किन्तैर्यदि दोला न हि बालकेलिलोला ॥
वसनाभरणानि दिव्यदिव्यान्यपि कोशा हसितालकेशकोशाः ।
विलसन्ति गृहेषु चेत् ततः किं यदि दोला न हि बालकेलिलोला ॥
अखिलं जगदेव शून्यवत् हृदये तस्य विभात्यहर्निशम् ।
मनुजस्य तु यस्य मन्दिरे विलसन्तीह न बालकेलयः ॥
तनयातनयाननेन्दवोऽभ्युदयन्ते भवनेषु येष्वलम् ।
भवनानि तु तानि तान्यहो शिशुशून्यं भवनं वनं मतम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नमन्ति क्ष्मापाला मणिगणमयोपायनकराः
सदैव श्रीकृष्णप्रणयरससम्पूर्णहृदयाः ।
मुदा तं सेवन्ते श्रिय इव पराः सुस्त्रिय इमाः
विना पुत्रैर्मन्ये ऽखिलमुदयमेनं खिलमिव ॥

—श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदयस्य द्वितीयाङ्के

शास्त्रीजी की गद्य-रचना पद्य-रचना से भी उत्कृष्ट है। वह सरल, चित्ताकर्षक एवं संस्कृत-विद्याध्ययन-परायण व्यक्तियों के लिये अत्यंत उपयोगी है। उदाहरण के लिये चंद्रप्रभाचरित में वृद्धों की महिमा का वर्णन देखिए—

वृद्धाः खल्वक्षयज्ञाननिधयो यदीयज्ञानसहस्रांशोऽपि न बालैर्न युवभिर्वा कदाचिदप्युपलभ्यते। न धर्मज्ञानं न कर्मज्ञानं न राजरीतिज्ञानं न कुलरीतिज्ञानं न हिताहितज्ञानं न सत्यासत्यज्ञानं न कृत्याकृत्यज्ञानं च विना वृद्धान् लब्धुं शक्यते। वृद्धानामन्धप्रायापि दृष्टिर्यत् पश्यति न तद्यूनां देदीप्यन्त्यपि दृष्टिः पश्यति वृद्धानां प्रोषितश्रोत्रावपि कर्णौ यच्छृणुतो न तद्यूनां सेन्द्रियदैवतावपि कर्णौ शृणुतः वृद्धानामव्यक्तयापि वाचा यदुच्यते न दद्यूनां स्फुटवर्णविभागयाऽपि वाचा वक्तुं शक्यते वृद्धानां जीर्णयाऽपि स्मृतिशक्त्या यत्स्मर्यते न तद्यूनां नवीनयापि स्मृतिशक्त्या स्मर्तुं शक्यते वलीकलिताङ्गैः पलितकेशैरसक्तसर्वेन्द्रियैर्जराजीर्णतया प्राप्तवैरूप्यैरपि वृद्धैः राजसभासु विद्वत्सभासु ज्ञातिसमाजेषु च या मान्यता यद्गौरवं यश्च सत्कारः सम्प्राप्यते सा मान्यता तद्गौरवं स सत्कारश्च स्वस्थशरीरैरलिकुन्तलैः सक्तसर्वेन्द्रियैरभिनवयौवनयताऽप्रतिरूपसम्पद्भिरपि किशोरैः किं कदाचिदपि सम्प्राप्यते नैवेति निर्विवादम्। ते खल्वगण्यपुण्यवन्तो निःसीमसद्भाग्यभाजो निरवधि सुखसिन्धवश्च येषां गृहान्प्रकाशयन्ति परमपवित्रदर्शना वृद्धगुरुजनमणयः—इत्यादि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्रीजी की इस लेखन-शैली के विषय में गुजराती और संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान् M.N. Dwevedi जी ने लिखा है—

The style of his works is very chaste and simple, soaring at times into beautiful imagery and grand diction, reminding the reader at once of Vishnu Sharma on one hand and Bana on the other."

इसी प्रकार अनेक विद्वानों ने उनकी ग्रंथ-रचना-शैली की प्रशंसा की है। एक ने लिखा है—

"The grace and the elegance of the style coupled with purity of diction and ease of expression make his works very charming. What strikes a reader is their high moral tone sustained in a manner to make these works instructive without being tiresome.

शास्त्रीजी यावज्जीवन संस्कृत-साहित्य की अतुलित सेवा करते रहे। वे मोरवी में संस्कृत पाठशाला के मुख्य अध्यापक रहे और वहाँ सेवा कर चुकने पर राज-नियमानुसार पेंशन पाते रहे। यों तो उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता था परंतु वृद्धावस्था का प्रभाव और शरीर की नश्वरता अपरिहार्य है। वे इस प्रकार बीमार हुए कि उनकी शस्त्रोपचार से चिकित्सा करनी पड़ी। मोरवी में जो हो सकती थी वह सब कुछ सहायता की गई और शस्त्रोपचार सफल भी रहा; किंतु वे चार-पाँच दिन से अधिक जीवित नहीं रह सके और आषाढ़ सुदि १५, विक्रम् संवत् १९७३ को—७४ वर्ष की आयु में—कैलासवासी हो गए। सर्वलोक-हित-रत शास्त्रीजी के परलोक-गमन का समाचार जिसने सुना वही शोकातुर हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीगुरुचरण-वियोग-विधुर विविध बुधजनों और सहृदयों का हृदय-संताप अनिर्वचनीय है। इस प्रतिकूल काल में श्री शारदा माता के कोष की सु-समृद्धि करनेवाले अपने लाल शंकरलाल के लोप से सब "शंकर, शंकर" करते रह गए। अंत में श्रद्धालुओं ने कीर्ति-कायावशिष्ट शास्त्रीजी के स्मरण में मोरबी में एक "शंकर-आश्रम" निर्माण किया जहाँ पर संन्यासी लोग आया करते हैं और नित्य श्रवण होता है।

इस लेख के लिखने में शास्त्रीजी के पुत्र श्री खेलशंकर शर्मा तथा उनके पौत्र श्री शुकदेवजी तथा महामहोपाध्याय हाथीभाईजी शास्त्री से जो सहायता मिली है उसके लिये यह लेखक अत्यंत आभारी है। खेद का विषय है कि शास्त्री शंकरलालजी के रचे हुए कई ग्रंथ अब तक अप्रकाशित ही हैं और कई एक अब अप्राप्य हो चुके हैं। क्या कोई शारदा माता का श्रद्धालु यथेष्ट सहायता कर उनके प्रकाशन में हाथ नहीं बँटायगा?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

महामहोपाध्याय महाकवि श्री शंकरलालजी के रचे हुए ग्रंथों की सूची

संख्या	ग्रंथ का नाम	विषय	
१	अनसूयाभ्युदय भोगवतीभाग्योदय	नाटक	छप चुके हैं।
२	सावित्रीचरित्र	"	
३	गोपालचिंतामणि	"	
४	ध्रुवाभ्युदय	"	
५	श्रीकृष्णचंद्राभ्युदय	"	
६	अमरमार्कंडेय	"	
७	भद्रायुविजय	"	मूल संस्कृत नहीं छपा; किंतु गुजराती अनुवाद छप चुका है।
८	वामनविजय	"	अभी नहीं छपे।
९	पार्वतीपरिणय	"	
१०	भ्रांतिभयभंजन	"	
११	केशवकृपालेशलहरी	"	
१२	पांचालीचरित्र	"	
१३	प्रसन्नलोपामुद्रा	"	
१४	अरुंधतीविजय	"	

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

१५	चंद्रप्रभाचरित	उपन्यास	छप चुका है।
१६	महेशप्राणप्रिया	"	अभी नहीं छपा।
१७	विद्वत्कृत्यविवेक	निबन्ध	
१८	विपन्मित्रं पत्रम्	"	छप चुके हैं।
१९	सेव्यसेवकधर्म	"	
२०	श्री रवाजीराज कीर्त्तिविलास	काव्य	खो गया।
२१	कच्छमहोदयः वा मानपत्रम्	"	
२२	श्रीबालाचरित	"	
२३	मेघ-प्रार्थना	"	छप चुके हैं।
२४	लघुकौमुदीप्रयोगमणिमाला	व्याकरण	
२५	अध्यात्मरत्नावली [1]	वेदांत	
२६	आह्निक	डायरी	अपूर्ण और अप्रकाशित हैं।
२७	संस्कृत-गुजराती कोष	कोष	

(१) यह गुजराती भाषा में है।

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१२) गर्भ श्रीमान् अथवा केरल के एक हिंदी कवि

[लेखक—श्री वेंकटेश्वर, मदरास]

प्रेममयी जगदंबा का सुंदर स्वरूप दिखलाकर उसकी अमृत-धारा का आस्वादन कराके अनेक आर्त हृदयों को अगाध आनंद-पारावार में निमज्जन कराने की अलौकिक शक्ति श्रेष्ठ कवियों के सिवा और किसी में भी दिखाई नहीं पड़ती। अनुगृहीत कवि जहाँ आवास करते हैं उस पुण्य-स्थान की जनता अलौकिक आनंद का अनुभोग सर्वथा कर सकती है। उस विशिष्ट विशुद्ध वातावरण के लोगों को विषाद की विष-ज्वाला कभी स्पर्श नहीं कर सकती। खासकर, यदि कवि भी भक्ति-मार्ग के अनुयायी हों, जगदीश्वर की अपार महिमा का वर्णन अपने सुमधुर गीतों से करने की विशेष शक्ति रखनेवाले हों तो उनकी वाणी में अधिक माधुर्य तथा सुख हो सकता है और उनकी कविता दिव्य-मंत्र के समान जप करने योग्य बन जाती है। फिर, कवि चाहे जिस देश के हों, जिस भाषा के हों, जिस जमाने के हों; यदि उनकी कविता सर्वसाधारण जनता के शून्य हृदयों में उच्च आदर्श तथा आकांक्षा का आविर्भाव कर सकती है, अथवा उनके सुमधुर गीतों का गान करके पापी भी परमात्मा के भजन में निमग्न होकर अनायास ही परमानंद-सुधा का पान कर पवित्र हो जाता है तो उन महान् कवियों के सारे उद्गार अवश्य ही लोक-सम्मान पाए बिना न रहेंगे। हाँ, संभव है उन महान् कवियों के नाम कभी-कभी संसार में गुप्त रहे हों, तो भी इसमें स्वल्प भी संदेह नहीं कि एक न एक दिन मेघ हट जायँगे, वर्षा रुक जायगी और प्रचंड भानु का तेजस्वरूप पुनः आँखों के सामने दिखाई पड़ेगा। अतः आज हम अपने प्रेमी पाठकों को हिंदी के एक ऐसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुप्त कवि का चरित्र सुनाना चाहते हैं जिन्होंने लगभग डेढ़ शताब्दी पहले राष्ट्र-भाषा हिंदी की सेवा अपने सुमधुर गीतों से की थी, यद्यपि उनकी मातृ-भाषा भरत-खंड के दक्षिण कोने की भाषा मलयालम यानी कैरली थी। उन्होंने देव-भाषा संस्कृत के साहित्य-भांडार को भी अपने सुंदर कीर्तनों से समलंकृत किया था। इतना ही नहीं, उनके कर्णमधुर हृदयाकर्षक कीर्तन, पद और गीत सारी द्राविड़-भाषाओं को अब भी सुशोभित कर रहे हैं; अस्तु।

ट्रावनकोर (स्यानंदपुर) एक छोटा सा सुंदर स्वतंत्र राज्य है। करुणामयी प्रकृति-देवी ने इस पुण्य देश को अपनी सारी सुंदरता प्रदान की है। यहाँ लाखों यात्री तथा प्रकृति के आराधक प्रतिवर्ष प्राकृतिक सुंदरता का संदर्शन करने आया जाया करते हैं। यहाँ की नद-नदियाँ, तरु-लताएँ तथा मंद मारुत सैकड़ों संतप्त हृदयों को सुशीतल बनाकर शांतिदेवी की सुखदायिनी गोद में समर्पित करते हैं। यहाँ के बड़े बड़े मंदिरों के नाम भारतवर्ष में सर्वत्र बहुत प्रसिद्ध हैं जिन्हें देखने सैकड़ों भक्त प्रतिदिन आ पहुँचते हैं। यहाँ का प्राचीन इतिहास गौरवमय माना जाता है। यहाँ पौराणिक काल से लेकर आधुनिक काल तक हिंदू राजा ही शासन करते आ रहे हैं। यहाँ के राजकुल में कई बड़े बड़े महाराज पैदा हुए हैं जो शूर-वीर, नीति-पालक तथा साहित्यानुरागी थे। हमारे कवि-पुंगव उन्हीं साहित्य-प्रेमी संगीत-मर्मज्ञ महाराजाओं में एक श्रेष्ठ महीपति थे।

महाकवि महाराज "श्री पद्मनाभदास वंचिपाल 'श्रीरामवर्मा' कुलशेखर किरीटपति" का शुभ जन्म १६ अप्रैल १८१३ ई० को स्वाति नक्षत्र के दिन 'तिरुवनंतपुरम्' नगर के प्रधान राजमहल में हुआ था। उनकी माता राजराजेश्वरी 'रानी सेतुलक्ष्मी बाई' थीं, जो अपने पुत्र के पैदा होने के समय रीजेंट (Regent) की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैसियत से राज-काज सँभालती थीं; क्योंकि तब राजवंश में पुरुष-संतान का अभाव था। अतः हमारे महाराज अपने पैदा होने के पहले ही से—अर्थात् जब आप गर्भस्थित थे तभी से—अपने राज्य के अधिकारी राजा हो गए थे, जिससे उनका नाम श्रीराम वर्मा 'गर्भ श्रीमान्' पड़ा। उनके जन्म-समाचार ने देश भर की जनता को एकदम आनंद-सागर में निमग्न कर दिया। गाँव गाँव में आनंदोत्सव मनाए गए। सब लोगों ने वंचिराज्य की भाग्य-लक्ष्मी का हृदय से अनुमोदन किया और अपने नए राज-पुत्र का यथाविधि स्वागत किया।

उसी शुभ अवसर पर एक शुभ-सूचक अद्भुत घटना भी हुई। ट्रावनकोर के पूर्व-भाग में सह्य नामक एक बड़ा पहाड़ है जिसे प्रकृति-माता ने अनुग्रह करके इस देश की रक्षा के लिये एक बड़ी मजबूत दीवार की तरह बना रखा है और जिसके होने से ही यह राज्य सब प्रकार से संपन्न एवं समृद्धिशाली हो गया है। हमारे महाराज के पैदा होने के दूसरे ही दिन उपर्युक्त पर्वत पर एक 'सफेद हाथी' पकड़ा गया। इसे अपने राजा तथा राज्य के उज्ज्वल भविष्य का एक शुभ शकुन मानकर लोगों ने और भी संतोष प्रकट किया।

लगभग छः महीने भी नहीं बीते थे कि जनता ने अपनी महारानी से गर्भ श्रीमान् को राज-सिंहासन पर समारूढ़ कराकर अभिषिक्त करने तथा मुकुट पहनाने की प्रार्थना की। इसके अनुसार एक दिन शुभ मुहूर्त्त में दरबार बुलाया गया और विधि-पूर्वक उनका अभिषेक मनाया गया। उसी दिन रानी ने पुरोहितों से अपने प्रिय पुत्र का 'अन्नप्राशन' भी कराया। यह बात बहुत प्रसिद्ध है कि रानी लक्ष्मी बाई भी अपने प्रेम-भाजन को उस दिन से 'महाराज' के नाम से ही संबोधित किया करती थीं।

महाराज के पिता 'किलिमानूर कोविलकम्' के 'कोइतंबुरान्' श्री राजराज वर्मा थे। वे एक अच्छे विद्वान् और सुयोग्य पुरुष थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ पर इस बात का भी उल्लेख कर देना हम आवश्यक समझते हैं कि यहाँ के राज-कुल में मामा का स्थान मुख्य माना जाता है और वही राज्य का अधिकारी होता है। मामा के बाद उसका बड़ा भांजा या छोटा भाई ही राजा होता है, न कि पिता के बाद उसका बड़ा पुत्र। अतः पिता का स्थान प्रधान नहीं; अस्तु।

गर्भ श्रीमान् अपने माता-पिता की आँखों के तारे थे। वे उनकी देख-रेख में खूब पाले गए थे, किंतु दुर्भाग्य से पूरा एक साल और कुछ महीने ही बीते कि महाराज की माता एक पुरुष-संतान को भी जन्म देकर, अपने दोनों पुत्रों को अपने पतिदेव श्री राजराज वर्मा और बहन रानी पार्वती बाई के हाथों सौंपकर, सुरलोक सिधार गईं। उनकी इस अकाल-मृत्यु से रानी पार्वती बाई को ही सबसे अधिक दुःख सहना पड़ा; क्योंकि सारे राज्य का भार उनके सिर पड़ गया। उन दिनों वे केवल तेरह वर्ष की लड़की थीं, तो भी श्री राजराज वर्मा की मदद से वे अपनी बहन की मृत्यु के बाद राजा की प्रतिनिधि की हैसियत से राजकाज सँभालने लगीं।

रानी लक्ष्मी बाई के समान श्री पार्वती बाई भी बड़ी बुद्धिमती, सुशीला एवं विदुषी थीं। राज-काज सँभालने में वे अत्यंत निपुण थीं। अपनी बड़ी बहन के पुत्र गर्भ श्रीमान् को वे अपनी ही संतान के सदृश प्यार करती थीं। उन्होंने मातृ-विहीन बालक को मातृ-वियोग का तनिक भी दुःख न होने दिया। पिता श्री राजराज वर्मा भी अपने पुत्र के लिये सदैव सब प्रकार की तकलीफें सहने को तैयार रहते थे। इसलिये गर्भ श्रीमान् को अपने बाल्यकाल में किसी प्रकार की भी तकलीफ न झेलनी पड़ी थी। वे श्री पार्वती बाई को ही अपनी माता समझकर प्यार करते थे।

रानी पार्वती बाई ने होनहार राजा गर्भ श्रीमान् की शिक्षा का यथोचित प्रबंध कर दिया था। संस्कृत, मलयालम, मराठी, हिंदी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तामिल, तेलगू, कर्णाटक, फारसी, अरबी आदि कई भाषाएँ सिखाने के लिये दूर दूर देशों के विचक्षण अध्यापक नियुक्त किए गए थे। इसके सिवा वे अँगरेजी भाषा का भी अध्ययन करते थे। तंजौर के एक बड़े विद्वान् पंडित टी० सुब्ब रायर महाराज के अँगरेजी-अध्यापक थे। महाराज की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। उनके बुद्धि-वैभव का पता इसी से लग जाता है कि इतनी छोटी अवस्था में ही वे इतनी अधिक भाषाओं के पूरे परिज्ञाता हो गए थे। वे सोलह वर्ष के भी न हुए थे कि उनका शुभ नाम सारे भारतवर्ष में विख्यात हो गया। कई विद्वान् लोग, उनको साक्षात् श्री सरस्वती देवी का वरद पुत्र मानकर दर्शन करने के लिये दूर दूर देशों से आने लगे। उनकी असाधारण बुद्धि-शक्ति एवं परिश्रमशीलता देखकर बड़े बड़े पंडित भी हृदय से उनका लोहा मानने लगे। वे शीघ्र ही 'सर्व-कला-वल्लभ' के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात"। अपनी आयु के तेरहवें वर्ष में 'केणल न्यूविलिन' नामक एक अँगरेज हाकिम के साथ उनको कुछ बातें करनी पड़ीं। उस समय राजा का पांडित्य देखकर उसने अपनी डायरी में यों लिखा है—"महाराज की आयु तेरह वर्ष की है, पर उनका पांडित्य उससे बहुत अधिक है। वे बड़े बुद्धिमान् हैं। वे विविध भाषाओं के ज्ञाता हैं। उनकी तर्क-शक्ति बड़ी अद्भुत है। उन्होंने मुझसे कहा कि 'Geometry' शब्द तो संस्कृत भाषा के 'ज्यामिति' शब्द का आभास मात्र है तथा 'Hexagon' (षष्ठकोणम्), 'Septagon' (सप्तकोणम्), 'Octagon' (अष्टकोणम्), 'Decagon' (दशकोणम्), 'Duodecagon' (द्वादशकोणम्) इत्यादि शब्द भी संस्कृत भाषा के शब्दों के आभास हैं। मैं उनकी तीव्र बुद्धि देखकर दंग हो गया। इतनी छोटी अवस्था में वे संस्कृत भाषा के पूरे पंडित हो गए हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और अँगरेजी का सामान्य अच्छा ज्ञान रखते हैं। फारसी का काफी परिज्ञान उन्हें प्राप्त हो चुका है। अन्य भाषाओं से मैं अनभिज्ञ हूँ, अतः उनके विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता। भगवान् इन नरपति को चिरायु करें।"

इससे हम भली भाँति समझ सकते हैं कि महाराज लड़कपन में कितने होनहार और होशियार थे। वे संगीत के बड़े प्रेमी थे। साहित्य की अपेक्षा संगीत में उनकी अधिक अभिरुचि थी। वे स्वयं गीत बनाकर खूब गाते थे। बाँसुरी, वीणा आदि बजाने में वे कुशल थे। सोलह वर्ष की आयु में वे संस्कृत भाषा में सुंदर गीत रचने लगे। उनमें से एक गीत नीचे दिया जाता है। पढ़िए और निश्चय कीजिए कि वे अपने लड़कपन में ही कैसे विद्वान् और कवि थे—

परशु राग

पन्नगशयन पाहि माम्।
पन्नगशयन पापविमोचन।
खिन्नतनाशन केशिनिषूदन ॥ १ ॥ (पन्नग०)
कञ्जविलोचन कालियदमन।
कुंजरगमन कोमलवदन ॥ २ ॥ (पन्नग०)
अंडजवाहन आश्रितपालन।
पांडवरंजन पौंड्रकभंजन ॥ ३ ॥ (पन्नग०)
देवकीनंदन दैत्यनिषूदन।
पावनचरण पालितभुवन ॥ ४ ॥ (पन्नग०)
गोरसचोरक गोपिकानायक।
वारिदमेचक वारणपालक ॥ ५ ॥ (पन्नग०)
पंचजनांतक पादसंसेवक।
वञ्चिभूपालक-वांछितदायक ॥ ६ ॥ (पन्नग०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वे चित्रकला और शिल्प-विद्या का भी अभ्यास करते थे। लोग कहते हैं कि उन्होंने स्वयं अपनी तस्वीर, तेल में छाया देखकर, बनाई थी। वे नियमशील होकर शिक्षा प्राप्त करते थे। उनके समान परिश्रमी राजा संसार में बिरले ही हो सकते हैं। वे बड़े स्वाध्यायी और प्रयत्नशील थे। उनकी अभ्यास-शक्ति और स्मरण-शक्ति निस्संदेह अतीव परिमार्जित एवं असाधारण थी।

सोलहवें वर्ष में ही वे स्वयं राज-काज सँभालने लगे। उन्हें अपने काम में अधिक कष्टों का सामना नहीं करना पड़ा; क्योंकि रानी श्री पार्वती बाई ने देश भर में असीम शांति स्थापित कर दी थी। हमारे महाराज अपनी प्रजा के लिये सब कुछ सहर्ष तिलांजलि देने को तैयार रहते थे। उनके राजत्व-काल में स्यानंदपुर की प्रजा धनी, सुखी और संपन्न थी। उन्होंने सैकड़ों विद्यालयों की स्थापना की थी। किसानों को उन्होंने कई प्रकार की सहायता प्रदान की थी। खेती की सुविधा के लिये कई नाले खुदवाए गए और अच्छी सड़कें बनवाई गईं। उन दिनों शत्रुओं से राष्ट्र को बचाए रखने के लिये अँगरेजों की एक बड़ी सेना ट्रावनकोर में रहती थी। उसका सारा खर्च ट्रावनकोर-सरकार के सिर पर था जिससे आमदनी का एक बड़ा भाग व्यर्थ नष्ट होता था। गर्भ श्रीमान् ने उस सेना की कोई आवश्यकता न समझी। अतः उन्होंने उसे लौटा दिया और बहुत बड़ा व्यय रोककर राष्ट्र की आय बढ़ाई। देशी 'नायर' सेना को प्रोत्साहन देकर उन्होंने देशवासियों का बड़ा उपकार किया। उन्होंने ही इस देश में सबसे पहले अस्पतालों की स्थापना की थी। उनके राजत्व-काल से ही अदालतों का ठीक ठीक नियन्त्रण और निरीक्षण होने लगा। उन्होंने कानून संबंधी कई भारी भूलें सुधार दीं। अपनी राजधानी में उन्होंने एक अजायबघर और वेधालय (Observatory) भी स्थापित किया। इस प्रकार वे अपनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रजा के सर्वस्व बन गए और लोग हृदय से उनकी प्रशंसा करने लगे। जनता उन्हें अपना पिता मानकर प्यार करती थी।

वे बड़े गुरु-भक्त थे। अतः उन्होंने अपने गुरु सुब्ब रायर को अपनी रियासत का दीवान बनाया। किन्तु वे बड़े न्यायी राजा भी थे। उन्होंने, किसी अन्याय के कारण, एक बार अपने उन्हीं गुरुजी को भी कठिन दंड दे दिया था। इससे उनकी न्याय-परायणता भली भाँति प्रकट होती है।

यद्यपि राज-काज सँभालने में ही उनका सारा समय बीतता था, तो भी उन्होंने अपना साहित्य-प्रेम और संगीतानुराग कभी कम नहीं होने दिया। वे इनके लिये भी कुछ न कुछ समय निकाल ही लेते थे।

दक्षिण भारत में इस समय भी कविवर त्याग-राज के कीर्तनों का प्रेम तथा आदर बहुत अधिक है। वे हमारे महाराज के प्रायः समकालीन थे। उनके कीर्तन अधिकतर तेलगू भाषा में हैं। उनके समय में लोग साहित्य की अपेक्षा संगीत को अधिक पसंद करते थे। अतः हमारे राजा को भी काव्य, खंड-काव्य, नाटक आदि के बदले कीर्तन, पद, गीत आदि बनाने पड़े, जिनमें साहित्यिक गुणों का अभाव नहीं है।

गर्भ श्रीमान् के समय में संस्कृत भाषा में संगीत की बड़ी कमी थी। किंतु उन्होंने इस अभाव का सत्यानाश करके ही छोड़ा। उन्होंने सैकड़ों सुंदर सुमधुर कीर्तन बनाए हैं जिनमें वेदांत के कठिन तत्त्व भी अतीव सरल रीति से वर्णित हैं। उदाहरण के लिये उनके एक-दो भाव-परिपूर्ण सुमधुर गीत यहाँ दिए जाते हैं—

कामोदरी-राग

कारणं विना कार्यं नोत्पद्यते किमपि कंजनाभनियतम्।
नीरदनीलमनोहरतरमूर्ते
दारिताश्रित जन दारुण विविधार्ते। (कारणं विना०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जननकारणं कर्म, ज्ञानकारणं विद्या;
धनमाटोपकारणं; तरुणी मोहकारणम्;
अनयो हानिकारणं, आधी रोगकारणम्;
धनसमृद्धिकारणं ननु धर्म्मो, जगदीश ॥१॥ (कारणं विना०)

तरुकारणं बीजं, धैर्यं जयकारणम्;
परमदैन्यकारणं भवति हीनयाचना;
करुणाकारणं साधुचरितशालिता; लोके
तरलता निखिलापदामिह कारणम् ॥२॥ (कारणं विना०)

शमदमादिकारणं साधुशास्त्रनिषेवा;
समसस्याप्तिकारणं सारवृष्टिरेवाहो;
तिमिराभावकारणं दिनमणी रमाकांत;
मम शर्म्मैककारणं कमलाक्ष तव पादौ ॥३॥(कारणं विना०)

गोपिकावसंत-राग

धन्योयमेव खलु भवति भूतले
धन्योयमेव खलु
अन्यसदैवतागण्यमहिमानम्
विन्यस्यति हृदि यो विशदमिह मुकुंदम् ॥१॥ (धन्यो०)

चिरकालार्जितेनापि शृणुत किमु वित्तेन ?
चरमकाले नैव परमायाति हि साकम्;
परमपूरुष पदपंकजं सकृदपि
शिरसा यो नमयति श्रीकरलालितम् ॥ २ ॥ (धन्यो०)

धनदारसुतागारघनसंसारवारिधौ
मनुजोयमहोरात्रं मज्जति वृथा बत;
सनकादिमुनिगेयं शौरेरिह चरितम्
मनसा स्मरति यो वा महापापविदलनम् ॥३॥ (धन्यो०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कामक्रोधलोभादिखलवैरिसमुदायम्
भीममतिभक्त्या संभिद्य निरयमूलम्
दामोदर हरे माधव पद्मनाभेति
नामानि जपति यो नत कैवल्यकारीणि ॥४॥ (धन्यो०)

इन गीतों से हम समझ सकते हैं कि हमारे महाराज गर्भ श्रीमान् देववाणी संस्कृत के कितने बड़े विद्वान् और कवि थे। वास्तव में संस्कृत-भाषा में कीर्तन, पद आदि की रचना करना आसान काम नहीं है, किंतु गर्भ श्रीमान् के कर्णमधुर-भाव-पूर्ण गीतों को पढ़ते समय ऐसा मालूम पड़ता है कि वे इस काम को उतना कठिन नहीं समझते थे। उनके संस्कृत-गीतों की भाषा नितांत शुद्ध एवं कर्ण-मधुर होती है। उनके सारे गीत भक्ति रस-पूर्ण होते थे।

हमारे महाराज ने संस्कृत-भाषा में ही अधिक गीत बनाए हैं। संस्कृत में उन्होंने कई संगीत-ग्रंथ भी लिखे हैं जिनमें भक्तमंजरी, स्यानंदपुरवर्णन, श्रीपद्मनाभशतकम्, नवरत्नमाला, अजामिलोपाख्यानम्, कुचेलोपाख्यानम् आदि बहुत प्रसिद्ध हैं।

गर्भ श्रीमान ने हिंदी भाषा में भी कुछ कीर्तन और पद बनाए हैं। कुछ लोग कहते हैं कि उनके सारे गीत अब नहीं मिलते; क्योंकि एक अँगरेज पदाधिकारी उनको अपने अधीन कर विलायत ले गया। पर, अब तो उनके चालीस के लगभग हिंदी गीत पाए जाते हैं, जिनमें बहुत सी त्रुटियाँ भी विद्यमान हैं। इसका एक कारण तो यह है कि ये गीत मलयालम लिपि में लिखे गए हैं और संशोधित नहीं हैं। यह भी संदेह किया जा सकता है कि ये गीत महाराज के ही हाथ से लिखे गए हैं या नहीं। हिंदी समझनेवालों के अभाव के कारण ये गीत अभी तक हिंदी अक्षरों में नहीं प्रकाशित हो सके। किंतु, संगीत-प्रेमी लोग इन हिंदी गीतों को त्रुटियों के साथ भी गाया करते हैं। उन गायक-बंधुओं से तथा 'Musical comp-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ositions' नामक मलयालम पुस्तक से इन पंक्तियों के लेखक को जितने हिंदी पद उपलब्ध हुए हैं उनको अन्यत्र प्रकाशित करते हैं। तो भी मनोरंजन के लिये उनमें से दो-तीन पद नीचे दिए जाते हैं। पढ़िए और समझ लीजिए कि १२० से अधिक वर्षों के पहले एक अहिंदी-प्रांत के महाराज राष्ट्र-भाषा हिंदी में कैसी विशिष्ट रचनाएँ कर सकते थे—

राग बिहाग—आदिताल (ख्याल)

कान्हा कब घर मों आए
एरी अलि री गोरी।
सोवत थी जब अपने मंदिर में सुपन मों आए गए
छिन नहिं चयन रयन नहिं निद्रा तन मन विकल भए ॥१॥
(कान्हा कब०)

वृंदावन की कुंज-गलिन मों गावत राग नए
जाकी छबि को निरखत निसि-दिन मोहे नर कइए ॥ २ ॥
(कान्हा कब०)

धेनु चरावत गोकुल मधुबन बनसी-वट मों छाए।
पद्मनाभ प्रभु फणि पर शायी जुग-जुग नाथ जए ॥ ३ ॥
(कान्हा कब०)

बिहाग आदि

मैं तो नहिं जाऊँ जननी जमुना के तीर।
इतनी सुनके मात जसोदा पूछति मुरहर से।
क्यों नहिं जावत धेन चरावन बालक कह हमसे ॥ १ ॥
(मैं तो नहिं०)

कहत हरी सब ग्वालिन मिल हम माँजत घन कुच से।
जब सब लाज भरी ब्रजबासिन कहे न कहो हग से ॥ २ ॥
(मैं तो नहिं०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तौ हू बात सबै मधुसूदन बोले जसुमति से।
जब सब गोपिन तब हरि के मुख ढाँकत निज कर से ॥ ३ ॥
(मैं तो नहिं०)

ऐसी लीला कोटि कियो कैसे जायो मधुवन से।
पदमनाभ प्रभु दीनउधारण पालो सब दुख से ॥ ४ ॥
(मैं तो नहिं०)

और भी एक गीत देखिए—

पूरबी राग चौताल

माहीपाले प्यारे तेरो बाँसुरी की धुन मेरो।
मन हर लीनो दुःख दीनो नंदनंदन ॥ १ ॥
(माहीपाले०)

मुरली से कीनो कीनो लोक कू अधीनो तोरे।
तोरे स्वरूप ध्यान लावे देववृंदन ॥ २ ॥
(माहीपाले०)

मोरपिंछ राजे माल मोतियन के बिसाल माथे
पर सोहे लाला केसरिया चंदन ॥ ३ ॥
(माहीपाले०)

पदमनाभ दीनानाथ माया तेरी जाने कौन।
जाने नाहिं सूर चंद मोहे काम फंदन ॥ ४ ॥
(माहीपाले०)

फिर संगीत-रसिकों के लिये भी एक गीत दिया जाता है—

धन्यासी राग बिलंदी

नाचे रघुनाथ रंग दासी जन गावे।
झनक झनक कनक कनक तोन्त तारितन तनारि
धिकिधा धिकिधा धिलांक मधुर धुन बजावे ॥ १ ॥
(नाचे०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थिरकु थिरकु थैय्य थैय्य दीतथिं तत कथ थैय्य
ध्रकुट धीं ध्रकुट धीं तधिन्न तान सुर मिलावे ॥ २ ॥
(नाचे०)

सुर नरेश मुनि गणेश तेरो ही प्रताप गावे।
पदमनाभ चरणदास कामित फल पावे ॥ ३ ॥
(नाचे०)

इस प्रकार गर्भ श्रीमान् के सारे हिंदी गीत भाव-पूर्ण एवं कर्ण-मधुर होते हैं। उनके पदों में संगीत के सभी गुण यथेष्ट मात्रा में मिलते हैं। सभी प्रमुख राग-रागिनियों में ही नहीं, बल्कि अपूर्व रागों में भी उन्होंने गीतों की रचना करके अपनी प्रतिभा एवं पांडित्य प्रदर्शित किया है। उनके हिंदी पदों की भाषा प्रायः सूर-दास से मिलती-जुलती है। भाव भी उन्हीं के जैसे हैं। विषय तो वे ही भक्ति-रस-परिपूर्ण वैष्णव-लीलाएँ हैं। शृंगाररस के मधुर पद पढ़ते समय कृष्ण-भक्त सूरदास की याद आए बिना न रहेगी। यह सच है कि गर्भ श्रीमान् के गीत, सूरदास के पदों की तरह, समझने में उतने कठिन नहीं हैं। उचित स्थानों पर समुचित शब्द-रत्नों का चयन कर अपने गीतों की गति में कमनीयता एवं कर्ण-प्रियता पैदा कर लेना गर्भ श्रीमान् की लेखनी की मुख्य विशे-षता है।

सूरदास, तुलसीदास, कबीर आदि महात्माओं की तरह गर्भ श्रीमान् भी एक भक्त कवि थे। भक्ति-भावना से भरे हुए वाता-वरण के भीतर काव्य-साधना में संलग्न रहनेवाले ये गायक-कवि अपने पावन हृदय को तो धर्म-प्रिय परम-भागवत तपस्वियों का सा बनाए रखते थे। भक्ति का तत्त्व है परमात्मा से प्रेम, प्रेम में तल्ली-नता और आत्मसमर्पण। भक्त को पूरा विश्वास होता है कि पर-मात्मा मेरी भक्ति को अवश्य स्वीकार करेगा। ऐसे सच्चे भक्त के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गानों में एक प्रकार की अद्वितीय दिव्य शक्ति रहती है। उन गानों को सुनकर भगवान् भी रीझ जाते हैं। भगवान् अपने भक्त नारद मुनि से यों कहते हैं—

"नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारद॥"

इसलिये साधारण कवियों की अपेक्षा भक्त-कवियों का महत्त्व अधिक रहता है और हमारे कविवर गर्भ श्रीमान् इस विशेष महत्त्व के सर्वथा अधिकारी हैं।

गर्भ श्रीमान् मुख्यत: एक सिद्धांती या उपदेशक नहीं। वे प्रधानत: एक कवि हैं, गायक हैं। उन्होंने केवल अपनी असीम भक्ति के कारण कुछ न कुछ हृदय से गाया है; अत: अपनी रचना में अलंकार, पद-लालित्य इत्यादि लाने का कठिन प्रयत्न करके उसे दूषित नहीं किया है। मन में जो आया सो लिख डाला। तो भी उनके गानों में कविता के गुण विद्यमान हैं। ठीक ही है; जो सच्चा कवि है, जिसका हृदय भगवान् के लिये पागल हो उठा है, उसकी रचना में गुण स्वयमेव आ जायँगे।

अस्तु, गर्भ श्रीमान् के मुख्य सिद्धांत ये हैं—अपने कुलदेव श्री पद्मनाभ के प्रति भक्ति को व्यक्त करना, उनके प्रेम में अपने को भूल जाना, भक्ति के सामने सब कुछ भूल जाना, श्री पद्मनाभ के सिवा दूसरे देवों की गौणता दिखाना, संसार की माया को व्यक्त करना। पाठक आगे चलकर यह जान सकेंगे कि वे अपने इन सिद्धांतों को अभिव्यक्त करने में कहाँ तक सफल हुए हैं; अत: हम अभी इसके विषय में कुछ नहीं लिखना चाहते।

संस्कृत और हिंदी के अतिरिक्त महाराज ने अपनी मातृ-भाषा मलयालम में भी कई उत्तम संगीत-ग्रंथ लिखे हैं। मलयालम में उन्होंने साठ से अधिक सुमधुर भक्ति-रस-पूर्ण गीत लिखकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बड़ी कीर्ति पाई है। ये गीत अब भी यहाँ के मंदिरों में गायक लोग प्रतिदिन गाया करते हैं और कन्या-पाठशालाओं में सिखाये जाते हैं। फिर, तेलगू, कर्नाटक, तामिल आदि भाषाओं में भी उन्होंने सैकड़ों सुंदर कीर्तन बनाए हैं जो दक्षिण भारत भर में अब भी बड़े चाव से गाये जाते हैं।

महाराज के गीतों को हम कीर्तन, पद और वर्ण इन तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। इनमें से कीर्तन तो सभी भगवान् की प्रशंसा एवं स्तुति से परिपूर्ण रहते हैं। उनमें भगवान् की सैकड़ों कथाओं का संक्षिप्त वर्णन भी रहता है। सभी रागों में कीर्तन लिखे जा सकते हैं और गर्भ श्रीमान् ने प्रायः सभी रागों में कीर्तनों की रचना की है। उनके कीर्तनों में से कुछ तो कुलदेव श्री पद्मनाभजी की प्रशंसा में और कुछ भिन्न भिन्न देवी-देवताओं की स्तुति में लिखे गए हैं। फिर, कुछ कीर्तन तो ज्ञान-पूर्ण विषयों पर भी मिलते हैं जिनमें वैराग्य की महिमा गाई गई है।

पद शृंगाररस के गान होते हैं जिन्हें नवयुवतियाँ अपने नाच-रंगों में गाया करती हैं। गर्भ श्रीमान् के सभी पद उच्च कोटि के होते हैं और उनमें अश्लील शृंगार नाममात्र को भी नहीं मिलता।

वर्णों की रचना संगीत-साहित्य की परकाष्ठा समझी जाती है; क्योंकि कीर्तन और पद तो सभी अपने प्रयत्न से लिख सकते हैं किंतु वर्ण संगीत-शास्त्र का पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त किए बिना कोई भी व्यक्ति—अनेक प्रयत्न करने पर भी—नहीं लिख सकता। वर्णों के अक्षर अधिकतर स्वराक्षर होते हैं और मात्रा आदि का नियम भी कठिन है। अतः जो उत्तम वर्णों की रचना करता है वह संगीत-कला में अधिक सम्मान प्राप्त करता है। हमारे महाराज ने बहुत से सुंदर भावपूर्ण वर्ण रचकर अक्षय कीर्ति प्राप्त कर ली है। देखिए उनका एक शृंगार वर्ण—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कामोदरी राग

सारस मृदुपाद सादरं मामव सरसि जनाभ कोमळ
पारिजातदान भाल शोभि तिलक
चारुवचसा तरसा नंदय रमण। (सारस मृदु०)

स्व:—सा स नि नि ध ध प प म म ग मा ग म पा म प ध ध प ध
सागर सम करि परम गमा मर पालन रुचिपद
सा रि स नि ध प ध नी ध प म ग रि स सा रि स रि
चारु विशद रदनी पमरुदपि वशी कुरुते
गरि गा म प धा नि ध नि प ध प म प ध प म ग स
भुवनेश सदा मधुप पिकरुतमपि मदयति
रि ग म पा ध रि स नि ध प म ग रि स नि ध प म प ध स
रि ग म
मतिमपार सुख कलय मुदमिह निरुपम पर धृतिकर
गरिसा स नी ध प म ग म पा स रि ग रि ग म प ध
सुहसावितील कचसमपाकलित दनुज वध।
(सारस मृदु०)

चरण:—नीरजबाणोपम (नीरज०)

१. धा प म ग रि स सा रि ग म प ध
तापहर वचसा विजित सुध। (नीरज०)

२. सा रि ग म ग नि स रि ग म प ध सा नि ध प म ग सा
ग मा प ध
सारसुम शर सायक गतरसामहह तरसा विलोकय।
(नीरज०)

३. पा ध नि नि ध ध प प ध प प म म ग म पा ध प म म
ग ग
पाटित बहु विरहिनि कर हृदमल पार्वण विधुरपि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रि ग म ग ग रि नि स पा ध स स रि रि ग ग म
किरति किरणमिह पावक सममयि निशि
म प प ध नि ध पा ध रि स स नि नि ध ध प म ग म प स
मयि विपुल कृपा धरित कनक वसन भरित रस।

(नीरज०)

महाराज केवल संगीत के विद्वान् ही न थे, वे कला के भी बड़े प्रेमी थे। उनके राजत्व-काल में चित्र-कला की दशा अच्छी थी। उन्होंने योरोप से भी अच्छे अच्छे चित्रकारों को बुलाकर अपने यहाँ रख लिया था। अपने खजाने का एक बड़ा भाग उन्होंने लोगों को शिक्षा प्रदान करने के लिये तथा उन्हें सुखी बनाने के लिये खर्च किया था। उनके साथ लगभग १५० संगीत के विद्वान् और पचास के लगभग चित्रकार रहते थे। इसके सिवा कई उच्च कोटि के कवि भी उनके साथ अधिवास करते थे। वे बड़े उदार पुरुष थे। उनकी उदारता के संबंध में कई कथाएँ प्रचलित हैं।

वे सचमुच दक्षिण-भारत के "भोज राजा" थे। "विद्वांसः कवयो भट्टाः गायकाः परिहासकाः इतिहासपुराणज्ञाः" ये सभी अंग उनकी राज-सभा में थे। वे तन, मन, धन से उन सभी विद्वानों को प्रोत्साहन प्रदान करते थे। वे कवियों चित्रकारों और संगीत के विद्वानों को कभी कभी अच्छे अच्छे इनाम देकर सम्मानित करते थे।

अपनी मातृ-भाषा मलयालम में एक व्याकरण-ग्रंथ लिखने के उपलक्ष्य में "रेवरेंड पीट" (Reverend Peat) नामक एक ईसाई सज्जन को महाराज ने एक हजार रुपए का पुरस्कार देकर सम्मानित किया था।

ट्रिवान्ड्रम् नगर के वर्तमान वाचनालय और पुस्तकालय (The Public Library) के जन्मदाता गर्भ श्रीमान् थे और वे प्रतिवर्ष पाँच हजार रुपए उक्त पुस्तकालय के लिये दिया करते थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'वासिष्ठम्" नामक एक वेदांत-ग्रंथ की तामिल-प्रांत से नकल कर लाने के संतोष में गर्भ श्रीमान् ने एक शास्त्रीजी को दो सौ रुपए दे दिए।

एक अँगरेजी-मलयालम कोष लिखकर "रेवरेंड बेइली" (Bailly) नामक एक अँगरेज साहब ने महाराज से कई इनाम प्राप्त किए थे।

बंबई के अधिवासी एक योरोपीय चित्रकार को महाराज ने सब खर्च देकर अपने यहाँ बुला लिया और उसकी योग्यता से संतुष्ट होकर उसको बहुत सा धन दिया। इसी तरह तंजौर के सुप्रसिद्ध चित्रकार रामस्वामी को, अपनी तस्वीर हाथी के दाँत में खींचकर भेंट करने के उपलक्ष में, महाराज ने कई कनकाभूषण और पाँच सौ रुपए इनाम दिए।

मलयालम के सुप्रसिद्ध कवि "इरविवर्म्मन् तंपी" महाराज के एक प्रिय सेवक थे। वे बड़े गरीब थे। उन्होंने एक बार मलयालम में निम्नलिखित आशय का एक सरस श्लोक लिखकर गर्भ श्रीमान् को भेंट किया—"हे महीपते! मेरा घर तो श्रीमद्भागवत ग्रंथ के समान अति प्राचीन है। हाँ, ठीक है कि दोनों इसलिये वैराग्य पैदा करने की शक्ति रखते हैं। जो कोई भागवत का अध्ययन करे वह संसार से विरक्त हो जायगा। उसी तरह जो कोई मेरा घर देख ले वह भी विरक्त हुए बिना न रहेगा। अतः दोनों बराबर हैं; किंतु एक दोष तो मेरे घर में अवश्य है कि उसमें अर्थ की कमी है जो भागवत में है—अर्थात् धन का अभाव है।"

रसिक कवि का वह श्लोक पढ़कर हमारे महाराज को सारा रहस्य मालूम हो गया और उन्होंने तुरंत कवि के लिये एक सुंदर मकान बनवा दिया।

महाराज की सभा में 'किलिमानूर कोइतंपुरान्' नाम के एक कवि थे जिनका पांडित्य देखकर महाराज ने उन्हें 'विद्वान्' की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पदवी प्रदान की थी। उनके एक सरस श्लोक पर मुग्ध होकर गर्भ श्रीमान् ने उन्हें कई पुरस्कार दे दिए। श्लोक निम्नलिखित आशय का था—

"हे महाराज! आप बड़े न्यायी और निष्पक्षवादी हैं; क्योंकि आपने भगवान् श्रीकृष्ण जैसे बड़ों को भी, उनके अपराध के लिये, समुचित दंड दे दिया है। भगवान् कृष्ण ने गोपियों के वस्त्र चोरी करके बड़ा उपद्रव किया। इस अपराध के लिये आपने उन कृष्ण को अपने हृदय-रूपी कारागार के भीतर कैद कर रखा है। इसलिये अभी उनकी धर्मपत्नी श्री लक्ष्मीदेवी अपने प्राणनाथ को विमुक्त कर अपने साथ ले जाने के लिये आपके यहाँ स्वयं उपस्थित होकर दासी का काम कर रही हैं। हे महाराज, करुणासिंधो! आप बड़े दयालु हैं। किंतु, आप कभी लक्ष्मी पर दया न कीजिए और उस कैदी को अपने कैदखाने से बाहर न जाने दीजिए।"

गर्भ श्रीमान् के दरबार में बड़े बड़े विद्वानों, कवियों, चित्रकारों, शिल्पकारों आदि के सिवा कई अच्छे अच्छे जादूगर और पहलवान भी थे। वे अपने मनोविनोद के लिये जापान, तुर्की, मलाया, चीन आदि देशों के एक एक आदमी को अपने महल में ही, भोजन वगैरह का सारा खर्च सँभालकर, सुख से पाला करते थे। उन्हें कभी कभी देखते रहने में महाराज को एक प्रकार का आनंद प्राप्त होता था। चीन के मनुष्य को भोजन देते समय वे स्वयं पधारकर उसके खाने की रीति देखा करते थे; क्योंकि इससे उन्हें बड़ा मजा मिलता था।

स्यानंदपुर नगर में श्री पद्मनाभजी का एक सुप्रसिद्ध वैष्णव मंदिर है। पुराने जमाने से लेकर अब तक यहाँ के राजा लोग अपने को श्री पद्मनाभजी के दास समझते आ रहे हैं। 'श्री मार्तंड वर्मा' नामक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक बड़े बहादुर महाराज ने दिग्विजय करके अपने देश को वर्तमान सीमा तक बढ़ा लिया और सारे राज्य को अपने कुल-देव श्री पद्मनाभजी के चरणों पर अर्पण कर दिया। फिर स्वयं श्री पद्मनाभ के दास होकर वे राज-काज सँभालने लगे। उस दिन से यहाँ के राजा लोग अपने को श्री पद्मनाभजी के दास मानने लगे और अपने नाम के पहले 'श्री पद्मनाभ-दास' भी लिखने लगे। यह प्रथा आज तक चली जा रही है; अस्तु।

हमारे महाराज गर्भ श्रीमान् भी अपने कुल-देव भगवान् श्री पद्मनाभजी के बड़े भक्त और उपासक थे। वे प्रतिदिन मंदिर में जाकर जब तक भगवान् के दर्शन न कर लेते तब तक जलपान न करते थे। प्रतिदिन प्रातःकाल वे अपने सुमधुर कीर्तनों से प्रायः दो घंटे तक भगवान् की स्तुति किया करते थे। लोग कहते हैं कि उन्हें श्री भगवान् का साक्षात् दर्शन भी एक बार प्राप्त हुआ था और भगवान् की कृपा से उन्हें वाक्सिद्धि भी मिल गई थी। कदाचित् इसी कारण उनकी अच्छी बुरी प्रायः सभी बातें सच उतरती थीं।

एक बार महाराज ने अपने एक गरीब नौकर को परिहास में 'विद्वान्' कहकर पुकारा और वह दो-तीन वर्षों के भीतर एक बड़ा विद्वान् निकला। महाराज ने उसका यथोचित सम्मान भी किया था। इसी तरह एक बड़े अफसर से एक बार नाराज होकर गर्भ श्रीमान् ने उसे 'पागल' कह डाला और दूसरे ही दिन से वह यथार्थ में पागल हो गया। उनकी वाक्सिद्धि के संबंध में ऐसी कई कथाएँ खूब प्रचलित हैं।

संस्कृत-साहित्य के गायक कवि गीत-गोविंद के रचयिता जयदेवजी, हिंदी के भक्त कवि परम भागवत सूरदासजी तथा द्राविड़-साहित्य के संगीताचार्य त्यागराजजी आदि महात्माओं ने अपने प्रत्येक पद के अंतिम चरण में अपना नाम भी अंकित करने का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रयत्न किया है। किंतु हमारे महाराज गर्भ श्रीमान् के कीर्तनों और पदों में कहीं भी नाम नहीं देखने में आता। हाँ, उनके प्रायः सभी गीतों में भगवान् श्री पद्मनाभजी का कोई न कोई नाम अवश्य मिलता है जिससे हम उनकी रचना पहचान सकते हैं और उनकी असीम ईश्वर-भक्ति, नम्रता, निःस्वार्थ-परायणता आदि स्पष्ट विदित होती हैं। श्री पद्मनाभ पर उनकी कितनी गहरी भक्ति और श्रद्धा थी वह निम्नलिखित हिंदी गीत से ही हम समझ सकते हैं। देखिए—

राग कानड़ा—चौताल

देवन के पति इंद्र, तारा के पति चंद्र।
विद्या के पति गणेश, दुःख-भार-हारी ॥ १ ॥ देवन० ॥
रागपति कानड़ा, बाजन के पति बीन।
ऋतुपति हैं वसंत रति-सुख-कारी ॥ २ ॥ देवन० ॥
मुनि-जन-पति व्यास, पंछी-पति हंस है।
नरपति राम अवध-विहारी ॥ ३ ॥ देवन० ॥
गिरि-पति हिमाचल, भूतन के पति महेश।
तीन-लोक-पति श्री पद्मनाभ गिरिधारी ॥ ४ ॥ देवन० ॥

गर्भ श्रीमान् के अंतिम दिन भगवान् के ही भजन में कट गए। उन्हें अपने जीवन में भारी निराशा झेलनी पड़ी, जिसके कई कारण थे। महाराज किसी कारण उस समय के 'रेजिडेंट' से अप्रसन्न हो गए थे। वह अँगरेज हाकिम देशी प्रजा को तुच्छ समझता और उस पर अत्याचार करना चाहता था। वह ईसाई धर्म का प्रचार करने की बड़ी कोशिश करता और हिंदू धर्म को चकनाचूर करना चाहता था। प्रजा के सर्वस्व महाराज गर्भ श्रीमान् 'रेजिडेंट' के विरोधी थे। वे साहब के विरुद्ध काम करते थे। उसको रोका करते थे। मद्रास के गवर्नर साहब के नाम दोनों ने एक दूसरे की शिकायतें लिख भेजी थीं। किंतु, अँगरेज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने लोगों का ज्यादा विश्वास रखते हैं जिससे हमारे महाराज को ही भारी हानि उठानी पड़ी। अतः वे उस समय से ही—अर्थात् अपनी मृत्यु के एक वर्ष पहले से ही—इस कपट-पूर्ण स्वार्थमय संसार से बिलकुल विरक्त होकर ईश्वर के भजन में सारा समय बिताने लगे। उन्होंने घोर तपस्या की। अनशन-व्रत आदि का भी अनुष्ठान किया। पूरे संन्यासी हो गए। अतः उनके शरीर की भारी क्षति भी हुई। धीरे धीरे वे पागल सरीखे हो गए, पर वे सदा-सर्वदा ईश्वर के भजन गाने में निमग्न रहते थे।

उनकी भक्ति और उत्साह सहस्रों गुना और अधिक प्रगाढ़ होता गया। वे संसार को बिलकुल भूल गए। वे सदैव श्री पद्म-नाभ में लीन रहने का प्रयत्न करने लगे। इस बीच उनका शरीर गलकर पंचतत्त्व में मिलना ही चाहता था कि उनके भक्त शिष्यों ने सेवा करके उन्हें मृत्यु से बचाने की पूरी चेष्टा की। आरंभ में कुछ दिनों तक उन्हें अपने प्रयत्न में थोड़ी सफलता जरूर मिली, किंतु पीछे उन सबको निराश ही होना पड़ा। महाराज अपने सर्वस्व श्री पद्मनाभ के पीछे पागल हो गए। घंटों तालियाँ बजा बजाकर और भजन गा गाकर वे भगवान् की आराधना करने लगे। गाते गाते उनको अपने शरीर की भी सुध-बुध जाती रही थी। वे कई घंटों पागलों की तरह अश्रुपात करते थे। इस बीच में उन्हें खाना-पीना भी विस्मृत हो गया। धीरे धीरे वे रोग-ग्रस्त हो गए।

अधिक क्या लिखा जाय, आखिर वे अपनी अक्षय कीर्ति को इस अवनी के लिये अर्पण करके, अपने ग्रंथ-सुमनों से संस्कृत, मलयालम, हिंदी, तेलगू, कर्नाटक आदि भाषा-देवियों की भक्ति-पूर्वक पावन पूजा कर, अपनी अनुगृहीत प्रजा को अगाध दुःख-सागर में असहाय छोड़कर २५ दिसंबर १८४६ को, केवल चौंतीस वर्ष की अवस्था में, सुरलोक सिधार गए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निस्संदेह गर्भ श्रीमान् एक संगीत-कवि और साहित्य-मर्मज्ञ थे। वे नीतिपालक महाराजा थे। उदारशील कला-प्रेमी और दानवीर शिक्षा-प्रणाली-सुधारक थे। उनके समान देववाणी संस्कृत भाषा के विरले ही संगीत-विद्वान् और कवि होंगे जो राष्ट्र-भाषा हिंदी के विदेशीय कवि, साहित्यानुरागी, संगीत-प्रेमी तथा विविध भाषाओं के पंडित भी हों। इन सबके सिवा, संसार ने शायद ही अब तक उनके समान एक संपूर्ण-त्यागी भक्त-शिरोमणि महाराज को पाया होगा, जिन्होंने अपना सारा जीवन ईश्वर के भजन गाने में ही विताया है। धन्य हैं ऐसे कवि-पुंगव।

गर्भ श्रीमान् के हिंदी कीर्तन

(१)

नट राग—झंपताल

जय देवकीकिशोर ! जय कोटिस्मराकार !
जय कालिंदीतटविहार ! जय गोपिकाजार ! ॥ १ ॥ जय० ॥
जय मुरली-गान-लोल ! जय सुवर्णरुचिचेल !
जय सलीलधृतशैल ! जय वारिदनील ! ॥ २ ॥ जय० ॥
जय चरित्रधुतपाप ! जय खंडितासुराटोप !
जय यादवकुलदीप ! जय गोपालरूप ! ॥ ३ ॥ जय० ॥
जय कुटिलासितकेश ! जय मुनिमानसनिवेश !
जय पंकजनाभाधीश ! जय भूमीरमेश ! ॥ ४ ॥ जय० ॥

(२)

ईमन कल्याणी राग

जय जय देवी ! जय जगजननी ! जय जय सरस्वति माई !
जय जय भवानी ! जय शरवाणी ! जय त्रिभुवन-सुखदाई !
तेरो हि माया अनंत अपार न्यार जाको कोई नहिं पाई ॥ १ ॥ जय जय० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हस्त-कमल में बीण विराजे जामें सबै सुर गाई ।

दूसरो हाथ विराजत पुस्तक वेद श्रुति उपजाई ॥ २ ॥ जय जय० ॥

तेरो रेणु हि भयो सब विद्या सुर नर चरण मनाई ।

पदमनाभ प्रभु चरण-सरोरुह सेवक के मन आई ॥ ३ ॥ जय जय० ॥

(३)

भैरवी राग—आदि ताल

रामचंद्र प्रभु तुम बिन प्यारे कौन खबर ले मेरी ।

बज रही जिनके नगरी में सदा धरम की भेरी ॥ १ ॥ रामचंद्र० ॥

जाके चरण-कमल की रज सों तिरिया तन को फेरी ॥ २ ॥ रामचंद्र० ॥

औरन को कछु और भरोसा हमें भरोसा तेरी ॥ ३ ॥ रामचंद्र० ॥

पदमनाभ प्रभु फणि पर शायी कृपा करो क्यों देरी ॥ ४ ॥ रामचंद्र० ॥

(४)

गौरी राग—आदि ताल

बजत बधाई नगरी रघुराई ।

धनुख बाण उठावे लछमण ठाढ़े नेरी

त्रिभुवन के सुखदाई ॥ १ ॥ बजत० ॥

सरजू-तीर-विहारी रतिपति के सम छायो

जनक-सुता के सहाई ॥ २ ॥ बजत० ॥

पदमनाभ हमारो शरण चरण तुमारो

फणिवर के पर शायी ॥ ३ ॥ बजत० ॥

(५)

काफी राग—आदि ताल

अवध सुखदाई अब बाजे बधाई ।

रतन सिंघासन के पर रघुपति सीता सहित सुहायो ।

यों भरत सुमित्रा-नंदन ठाढ़े चामर चतुर डुलायो ॥ १ ॥ अवध० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गालव गालव जन मंगल गावत देवन बजायो ।
यों रावण मारे असुर सब मारे राज विभीषण पायो ॥ २ ॥ अवध० ॥
मात कौसल्या करत आरती निज मन वांछित पायो ।
यों पदमनाभ प्रभु फणि पर शायी त्रिभुवन सुख करि आयो ॥ ३ ॥ अवध० ॥

(६)

धन्यासी राग—विलंदी

नाचे रघुनाथ रंग दासी जन गावे ।
झनक झनक कनक कनक तोंत तारि तन तनारि ।
घिकिधा घिकिधा घिलांक मधुर धुन बजावे ॥ १ ॥ नाचे० ॥
थिरकु थिरकु थैय्य थैय्य दीतथिं तत कथ थैय्य ।
धकुट धीं धकुट धीं तधिन्न तान सुर मिलावे ॥ २ ॥ नाचे० ॥
सुर नरेश मुनि गणेश तेरो ही प्रताप गावे ।
पदमनाभ चरण-दास कामित फल पावे ॥ ३ ॥ नाचे० ॥

(७)

धन्यासी राग—विलंदी

विश्वेश्वर दरसन कर चल मन तुम कासी ।
विश्वेश्वर दरसन जब कीन्हों बहु प्रेम सहित ।
काटे करुणा-निधान जनन मरण फाँसी ॥ १ ॥ विश्वेश्वर० ॥
बहती जिनके पुरी मों गंगा पय के समान ।
वाके तट घाट घाट भर रहे संन्यासी ॥ २ ॥ विश्वेश्वर० ॥
भस्म अंग भुज त्रिशूल उर में लसे नाग-माल ।
गिरिजा अरधंग धरे त्रिभुवन जिन दासी ॥ ३ ॥ विश्वेश्वर० ॥
पदमनाभ कमल-नयन त्रिनयन शंभु महेश ।
भज ले इन दो स्वरूप रहिए अबिनासी ॥ ४ ॥ विश्वेश्वर० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८)

गौरी राग—आदि ताल

शंकर श्री गिरिनाथ प्रभु के
नृत्त विराजत चित्र सभा में।
भस्म त्रिनेत्र गले रुंडमाला
भूतन के संग नाचत भृंगी ॥ १ ॥ शंकर० ॥
त्वनन तनन ननन धुंगु बाजे।
देव मुनी सब गगन विराजे ॥ २ ॥ शंकर० ॥
घ्रकुट धीं तधीं तांदों धुन्न बाजे।
कोटि मयन जाको देखे सो लाजे ॥ ३ ॥ शंकर० ॥
ताथै तकिट तक श्रुति गति राजे।
पदमनाभ मन कमलं बिराजे ॥ ४ ॥ शंकर० ॥

(९)

धन्यासी राग—चौताल

सीस गंग भस्म अंग अरधंग गौरी संग बरधा के।
बरतुरंग ताप-भंग जग के ॥ १ ॥ सीस० ॥
सदा नंग भरा रंग भूषणा के भए।
भुजंग ओढ़े चर्म मतंग संग की जो पग के ॥ २ ॥ सीस० ॥
हतानंग कृपापांग धारे हाथ बीच कुरंग।
वास कीन्हो हृदय-कमल पदमनाभ प्रभु के ॥ ३ ॥ सीस० ॥

(१०)

हमीरकल्पा राग—चौताल

करुणानिधान कुंज के विहारी।
तुमरी वंसी लाला मेरो मनोहारी ॥ १ ॥ करुणा० ॥
इस बंसी से सुर नर मुनि मोहे।
मोह गई सारी ब्रज की नारी ॥ २ ॥ करुणा० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब स्याम-सुंदर के तन देखी
जनम जनम के मैं संकट तारी ॥ ३ ॥ करुणा० ॥
मोर मुकुट पीतांबर सोहे
कुंडल की छबि मैं बलिहारी ॥ ४ ॥ करुणा० ॥
दशम स्कंध भागवत गावे
नख पर गोबरधन गिरिधारी ॥ ५ ॥ करुणा० ॥
पदमनाभ प्रभु फणि पर शायी
दनुज-कुल-हरण नाथ मुरारी ॥ ६ ॥ करुणा० ॥

(११)

भैरवी राग—बिलंदी

बाजत मुरली मुरार सुंदर जमुना किनारे ।
रास रास ग्वाल-बाल संग मदन प्यारे ॥ १ ॥ बाजत० ॥
टीक भाल प्रेम-जाल लसत जैसे ।
चंद्र-बाल साँवरो दया बिसाल मुक्तमाल धारे ॥ २ ॥ बाजत० ॥
देव बंद पद मुकुंद मोहनो ।
आनंद बृंद गोपिका चकोर चंद नंद के दुलारे ॥ ३ ॥ बाजत० ॥
कोटकांतन ललाम तीन लोक नाथ श्याम गावत ।
श्रुति जाके नाम भक्त कांतारे ॥ ४ ॥ बाजत० ॥
तान मान सरस बान बीच बीच मधुर गान ।
श्री हरी कृपा-निधान दनुज मान हारे ॥ ५ ॥ बाजत० ॥
गोप रूप दुरित कूप गमन ताप हर प्रताप ।
पाप रूप तिमिर दीप श्रीकलाप न्यारे ॥ ६ ॥ बाजत० ॥
मन उमंग भरे कुरंग सुर नरेश मुनि विहंग ।
मोहत श्री पदमनाभ भाव सों तुमारे ॥ ७ ॥ बाजत० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१२)

अठाणा राग—आदि ताल

सुमरण कर जदुनाथ हरी के,
वास कियो जिन धर्म दरी के,
सुमरण से जिनके ॥ सुमरण० ॥
एक छण में केते पतित सुधारे प्यारे ।
पीपा तारे सुदामा तारे वेस्वा तारे अजामिल न्यारे ॥ १ ॥ सुमरण०॥
मीन कच्छ सूकर नरहरि प्रभु वामन रूप बलि मद हारे ।
परशुराम रघुराम राम बल कलकि रूप धर दैत्य संहारे ॥ २ ॥
॥ सुमरण० ॥
शिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक जिनको निसि-दिन मन में धारे ।
सात रात भर गिरिवर धारो सो मन मनमोहन नंद दुलारे ॥ ३ ॥
॥ सुमरण० ॥
भज ले रामकृष्ण मधुसूदन पुरुषोत्तम ब्रजराज मुरारे ।
जप तप राखे अधम उधारण पदमनाभ प्रभु नाथ हमारे ॥ ४ ॥
॥ सुमरण० ॥

(१३)

धन्यासी राग—चौताल (ध्रुपद)

नंद-नंद परमानंद ब्रज-भूमि-पूर्ण-चंद ।
मन चक्रधर मुकुंद कुंददंत भज रे ॥ १ ॥ नंद० ॥
चिदानंद मुनि-बृंद गावे तेरा मान छंद सोहे ।
भाल तिलक-बिंद श्री गोविंद धर रे ॥ २ ॥ नंद० ॥
नवा मंद करे बंद जोड़े हाथ शुक सनंद ।
काटो मेरे दुरित-फंद पदमनाभ पद रे ॥ ३ ॥ नंद० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१४)

भैरवी राग—आदि ताल

कृष्णचंद्र राधा मनमोहन मेरे मन मों विराजो जी।
मोरपिंछ कटि काछनी राजे कर मुरली उर माल लासे॥
फणिवर के पर निरत करत प्रभु देव मुनीश्वर गगन बसे॥ १॥
॥ कृष्ण० ॥
हाथ जोड़ सब नाग-वधू-जन करें विनती हरि चरणन से।
छोड़ो हमरे प्रीतम को हम अंचल धोवें अँसुवन से॥ २॥
॥ कृष्ण० ॥
पदमनाभ प्रभु फणि पर शायी कब इन जायो चितवन से।
ऐसी लीला कोटि तुमारी नहिं कहि जावे कविजन से॥ ३॥
॥ कृष्ण० ॥

(१५)

विहाग राग—आदि ताल

मैं तो नहिं जाऊँ जननी जमुना के तीर।
इतनी सुनके मात जसोदा पूछति मुरहर से।
क्यों नहिं जावत धेनु चरावन बालक कह हमसे॥ १॥
॥ मैं तो नहिं० ॥
कहत हरी सब ग्वालिन मिल हम मींजत घन कुच से।
जब सब लाज भरी व्रज बासिन कहे न कहो दृग से॥ २॥
॥ मैं तो नहिं० ॥
तौं हू बात सबै मधुसूदन बोले जसुमति से।
जब सब गोपिन तब हरि के मुख ढाँकत निज कर से॥ ३॥
॥ मैं तो नहिं० ॥
ऐसी लीला कोटि कियो कैसे जायो मधुवन से।
पदमनाभ प्रभु दीन-उधारण पालो सब दुख से॥ मैं तो नहिं० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१६)

भैरवी राग—आदि ताल

बंसीवाले ने मन मोहा।
बोली बोले मीठी लागे।
दर दर उमंग करावे ॥ १ ॥ बंसीवाले० ॥
बेणुन बाजे तान गावे।
निसि-दिन गोपियाँ रिझावे ॥ २ ॥ बंसीवाले० ॥
साँवरा रंग मोहनी अंग।
सुमरण तन की भुलावे ॥ ३ ॥ बंसीवाले० ॥
कालिंदी के तीर ठाढ़े।
मोहन बाँसुरी बजावे ॥ ४ ॥ बंसीवाले० ॥
पदमनाभ प्रभु दीनबंधु।
सुर नर चरण मनावे ॥ ५ ॥ बंसीवाले० ॥

(१७)

विहाग राग—आदि ताल

सुनो सखि मेरी मन की दरद री।
जब फिरती मैं रंगमहल में
सेज पलँग पर तड़के जाती ॥ सुनो० ॥
बेल चमेली दौना मरुवा
चंपे गुलाब की हार बनाती ॥ १ ॥ सुनो० ॥
जैसे जल बिन तरसत पंछी।
तरस रही मेरो पिय बिन छाती ॥ २ ॥ सुनो० ॥
सोवत नाहिं लगे गोरि ! निद्राऊँ।
बीच बीच पिया को बुलाती ॥ ३ ॥ सुनो० ॥
निसि-दिन भर भर चुवा रे चंदन।
अतर अरगजा अंग लगाती ॥ ४ ॥ सुनो० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१८)

यमुना कल्याणी राग

आज आए श्याम मोहन रास-मंडल खेलने।
बाँसुरी की धुनि को लागे तान तनन नतों तनें।
बाजे ताल मृदंग की धुन ध्रुकट तकिट तक ध्रकुट तथां ॥ १ ॥आज०॥
नाच रहे गोरि ता तथैय्या थैत थै तै तकरि तें।
बाजे पायल छुंछन ननन झनन ननन नतन नतों ॥ २ ॥आज०॥
तान गावे तकदीं तादिथि रकतक तकतें तथें धिन्न।
किटतक धिन्न किटतक धिन्न किट तक तक तथों ॥ ३ ॥आज०॥
पदमनाभ तुमारि लीला क्या कहूँ मैं साँवरो।
ताप-संकट शरणे आया सो हमारो तुम हरो ॥ ४ ॥आज०॥

(१६)

राग भैरवी—आदि ताल

आए गिरिधर द्वारे मेरे गोरी।
अंजन अधर ललाट महावर नयन उनींदे चल आए।
रयन समय प्रभु छलबल करिके कौन तिया को विरमाए ॥१॥आए०॥
बिन गुण माल बिराजत हिय में दृढ़ गलबय्या सुख पाए।
व्रज नारी को वंचन करके कैसे पीतम सुख पाए ॥ २ ॥ आए० ॥
सोलह सिंगार करि फूलन के हार लिए बिविध सुगंध से मन भाए।
बैठी थी भो मन के साथी कुमुद सरोवर कुम्हलाए ॥३॥आए०॥
सुख के कारण दुख के निवारण मधुबन मुरली धुन गाए।
पदमनाभ प्रभु फणि पर शायी कोटि मयनतन छबि छाए ॥४॥आए०॥

(२०)

भैरवी राग—आदि ताल

आन मिलो महराज हमारो।
होऊँ तोरी दासी लाला नंदकुँवर प्यारो ॥१॥ आन० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चुन चुन कलियाँ मैं सेज बनाऊँ ।
सेज पलंग रंग माल तुम्हारो ॥ २ ॥ आन० ॥
अतर अबीर गुलाब लगाऊँ ।
प्रेम-कटारी से मोको नहीं मारो ॥ ३ ॥ आन० ॥
पदमनाभ प्रभु फणि पर शायी ।
कबहुँ नहीं मोको नाथ बिसारो ॥ ४ ॥ आन० ॥

(२१)

सुरटि राग—आदि ताल

फैली पिया चाँदनी रात । अब रहियो मोरे साथ ।
बिजरी से पीत डुलाऊँ । भुज में भुज ही मिलाऊँ ।
सब फूल हार बनाऊँ । मन भर भर भूषण पाऊँ ॥१॥ फैली० ॥
तन में अबीर लगाऊँ । अँगिया के कोर खुलाऊँ ।
दिन के बियोग बुझाऊँ । तोसे चुनरि हमारि रँगाऊँ ॥२॥ फैली० ॥
जैसे तृखा से वपय्या । पावे सदा दुःख सय्या ।
ऐसो तवूँ मोरे भय्या । तुम डारो पिया गल बय्या ॥३॥ फैली० ॥
कोने खबर मो ले बय्या । होवे नहीं सुख दय्या ।
साधु के हिय में रहय्या । पदमनाभ प्रभु मो बलैय्या ॥४॥ फैली० ॥

(२२)

सारंग राग (ध्रुपद)

चलिए कुंजन में तुम । हिल मिल श्याम हरी ।
देखो जमुना रे बही सुंदर अति नीर भरी ॥ १ ॥ चलिए० ॥
छुड़िए कैसे मोर को । मैं तो तेरो हाथ धरी ॥ २ ॥ चलिए० ॥
सुनिए कोयल के बोल पिय को क्या हक री ॥ ३ ॥ चलिए० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२३)

झिंझोटी राग—आदि ताल (ख्याल)

गाफिल भइलो रे मियाँ।
मैं कैसे जाऊँ।
इन बातन में मान न कीजे।
मैं तो सोही।
गाफिल भइलो रे मियाँ॥
गोरी! मत मारो बाण से।
नैनों दे प्यारी।
गाफिल भइलो रे मियाँ॥

(२४)

पूर्वी राग

आली मैं तो जमुना जल भरन गई। जब श्यामसुंदर सों भेंट भई।
मोरन के पिंछ सीस बिराजत। बाँसुरि मो उपजत तान नई॥१॥ आली०॥
गौवन के संग चण धावे चण ठाढ़े।
ग्वालबाल से बोली बोले अमृतमई॥ २॥ आली०॥
सोइ पदमनाभ प्रभु फणि पर शायी।
मोहे निहाल करे त्रिलोक-दई॥ ३॥ आली०॥

(२५)

धन्यासी राग—चौताल (ध्रुपद)

जमुना किनारे प्यारे कदम पर मोहन।
बाँसुरी बजावे सखि! कुंज-भवन में॥ १॥
मोर पिंछ गले माल मकराकृत कुंडल।
मकुटादिक भूषण सोभा देत तन में॥ २॥
पदमनाभ दीनबंधु मेरो ताप हारो।
प्रभु गोपीनाथ गिरिधर राजो मेरे मन में॥ ३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२६)

विहाग राग—आदि ताल (ख्याल)

कान्हा कब घर मों आए। एरी अलि री गोरी।
सोवत थी जब अपने मंदिर में सुपन मों आन गए।
दिन नहिं चयन रयन नहिं निद्रा, तन मन बिकल भए॥१॥ (कान्हा कब०)
वृन्दाबन की कुंजगलिन मों गावत तान नए।
जाकी छबि को निरखत निसि-दिन मोहे नर कइ थे ॥२॥ (कान्हा कब०)
धेनु चरावत गोकुल मधुबन बनसी वट मों छाए।
पदमनाभ प्रभु फणि पर शायी जुग जुग नाथ जए॥३॥ (कान्हा कब०)

(२७)

काफी राग—आदि ताल (ख्याल)

जाओ मंत तुम परदेस। बालम मेरे जू प्यारे॥
अत्तर लगाऊँ सुगंध लगाऊँ। और गुलाब अबीर॥
कमल सरोवर से उड़ पंछी। कैसे जीवे विन नीर॥

(२८)

खमाच राग—आदि (टप्पा)

अब तो बैरागिण भई आली मैं तो, अब तो बैरागिण भई।
साज सिंगार कछु नहीं भावै, सुख सब भूल गई॥ (अब तो०)

(२९)

परशु राग—चौताल (ध्रुपद)

साँवरो तेरे मुरली धुन से बावरी भई सबै ब्रजनारी।
झननन सननन झुंझनन ननहबा जतधुनन पर गिरिधारी॥(साँवरो०)
थिरकत थैतकथों तरिकिट तक्क नाचत सब मिल।
श्रुतिगति कारी सयन नसे सब के दुःख नासत,
पदमनाभ छबि मैं बलहारी॥ (साँवरो०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३०)

बिहाग राग—चौताल

ब्रज की छबि हा गई गयो जब तें।
कुंद हरित लता सब सुखन आई ॥ १ ॥
असुवन से हम अंचल धोवें सदा को।
जा से प्रेम राख्यो यामें कौन भलाई ॥ २ ॥
ऊधो हमरो संदेस माधो सों कहियो।
जाय पद्मनाभ की कृपा जो तीन लोक छाई ॥ ३ ॥

(३१)

पूर्वी राग—चौताल

ऊधो सुनिए मेरो संदेस, चले जब से पिया परदेस।
गौवाँ तृण नीर त्याग कीन्हीं, सबै ग्वाल-बाल शोच कीन्ही।
जले जमुना नहीं भावै, घड़ी भर कुंज कुम्हलावै ॥१॥ (ऊधो०)
हाथे मुरली गले माला, चले जब नंद के लाला।
मोहे ब्रज के जो नरनारी, भूले कैसे मोको बनचारी ॥२॥ (ऊधो०)
जब लीनो जनम ब्रज में, हरो सब ताप च्रण भर में।
ऐसे प्रभु के वियोग सहै, कैसे हमको सो छाँड़ि रहै ॥३॥ (ऊधो०)
जाके महिमा पुकारे वेद, जाको नहिं लोक लोक विभेद।
जाके बल से हरे मन शूल, ताके मुखचंद्र से कर दूत ॥४॥ (ऊधो०)

(३२)

पूर्वी राग—चौताल

माहीपाले प्यारे तेरो बाँसुरी की धुन मेरो।
मन हर लीनो दुःख दीनो नंद-नंदन ॥ १ ॥ (माहीपाले०)
मुरली से कीनो कीनो लोक कू अधीनो तोरे।
तोरे स्वरूप ध्यान लावे देववृंदन ॥ २ ॥ (माहीपाले०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोरपिंछ राजे माल मोतियन के विसाल माथे।
पर सोहे लाला केसरिया चंदन ॥ ३ ॥ (माहीपाले०)
पदमनाभ दीननाथ माया तेरे जाने कौन।
जाने नाहिं सूर चंद मोहे काम फंदन ॥ ४ ॥ (माहीपाले०)

(३३)

कानड़ा राग—चौताल

देवन के पति इंद्र तारा के पति चंद्र।
विद्या के पति गणेश दुःख-भार-हारी ॥ १ ॥ (देवन०)
राग-पति कानड़ा बाजन के पति बीन।
ऋतु-पति है वसंत रति सुखकारी ॥ २ ॥ (देवन०)
मुनि-जन-पति व्यास पंछी-पति हंस है।
नर-पति राम अवध-बिहारी ॥ ३ ॥ (देवन०)
गिरि-पति हिमाचल भूतन के पति महेस।
तीनलोक-पति श्री पदमनाभ गिरिधारी ॥ ४ ॥ (देवन०)

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१३) "साइको-ऐनेलेसिस"

[लेखक—श्री केशवदेव शर्म्मा, मथुरा]

मनुष्य की समस्त शक्तियों का केंद्र उसका मस्तिष्क (mind) ही होता है, यह एक अत्यंत प्राचीन और समय-सुरक्षित सिद्धांत है, परंतु इतना ही कहना क्या उसकी उचित परिभाषा हो सकती है! क्योंकि मस्तिष्क शब्द को यदि संपूर्ण व्यक्ति के अर्थ में लेकर उस पर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि जो कुछ हमको दिखलाई पड़ रहा है वह मनुष्य की निजी और प्राकृतिक शक्तियों का उद्रेक ही नहीं है; जो शक्तियाँ उसके मस्तिष्क के अंदर, उसके जन्म के साथ ही उत्पन्न हुई थीं, उनका मूल रूप इतना व्यापक और इतना विभिन्न नहीं था। जीवन की सुरक्षा के लिये, प्रकृति ने जिस प्रकार जीव के अनेक शारीरिक अंगों को भिन्न भिन्न विशेषताएँ प्रदान करके उसे अनेक सूक्ष्म क्रियाओं से संपन्न बनाया है, उसी प्रकार प्राणी की सुव्यवस्था के लिये प्रकृति ने उसके मस्तिष्क में भी कुछ रक्षक प्रवृत्तियों के बीज डाल दिए हैं। परंतु भेद यही है कि शारीरिक क्रियाओं की भाँति, मानवीय मानसिक प्रवृत्तियाँ निश्चित और निर्दिष्टमुखी नहीं होतीं। हमारा यकृत् भोजन पचाने में सहायक होने के अतिरिक्त देख या सुन नहीं सकता, परंतु हमारे स्वभाव में जो भय का एक सार्वजनिक तत्त्व है, उसके विषय में यह देखने में आता है कि वह एक आदमी को कायर, दूसरे को दूरदर्शी और तीसरे को कंजूस बना देता है। अतः मन की आदिम प्रेरणाओं का सांसारिक और सामाजिक वातावरण से संपर्क होने के उपरांत, मनुष्य ने अपने विकास और अभिव्यक्ति के लिये किस मनोवैज्ञानिक मार्ग का अनुसरण किया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है—यहीं पर उसके मस्तिष्क की पहचान की जा सकती है। लेकिन उस मार्ग, उस लकीर, की गति के नियमों को जाने बिना हमको मानव-स्वभाव का वस्तुतः ज्ञान नहीं हो सकता। जीवन की असंख्य छोटी छोटी घटनाओं में से यह कैसे पहचाना जाय कि अमुक घटनाओं के अमुक प्रभावों ने व्यक्ति के मन को तोड़-मोड़कर उसे उसका वर्तमान रूप दिया है? साइको-ऐनेलेसिस इसी प्रकार की खोज की एक वैज्ञानिक पद्धति है।

इसके मुख्य आचार्य श्रीयुत फ्रूड हैं। मनोविज्ञान और समाज-शास्त्र दोनों को एक साथ रखकर जो अध्ययन आज तक हुआ है उसमें फ्रूड के सिद्धांत सबसे बाद के हैं और वे ही इस लेख का विषय हैं। साइको-ऐनेलेसिस के दो अर्थ लगाए जाते हैं—एक तो बहुत से मानसिक रोगों की चिकित्सा का फ्रूड द्वारा प्रचलित एक ढंग, दूसरे "अचेतन मस्तिष्क" तथा उसके संबंध की वैज्ञानिक व्याख्या। यहाँ पर हमारा अभिप्राय पिछले ही अर्थ से है।

मनोविज्ञान-शास्त्र के लिये इस सिद्धांत की नवीनता तथा महत्ता इसी में है कि फ्रूड के विचारानुसार मनुष्य का समस्त मानसिक जीवन केवल उसकी कुछ मूल प्रवृत्तियों और सामाजिक आवश्यकताओं के अंतर्द्वंद्व द्वारा ही संगठित और शासित होता है, और उन प्रवृत्तियों में संयोग-कामना सर्वप्रमुख रहती है। "दमन" उनके सिद्धांत का एक मुख्य शब्द है। मनुष्य की ऐसी प्रवृत्तियों या इच्छाओं का, जो उसके सामाजिक आदर्शों तथा परिस्थितियों के अनुकूल नहीं होतीं, वह दमन करता रहता है और वे मानस के अचेत भाग में चली जाती हैं। अतः विस्मृति हमारी चेतना के लिये यद्यपि प्रत्यक्ष में कोई प्रभाव नहीं रखती, परंतु फ्रूड के विचारानुसार हमारी ये दबी हुई इच्छाएँ वास्तव में कभी लुप्त नहीं होतीं। इनका निवासस्थान "अचेतन मस्तिष्क"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में होता है और हमें ज्ञात हुए बिना ही ये हमारे कर्मों पर अपनी छाप डालती रहती हैं। इस प्रकार "अचेतनता" फ्रूड के अर्थ में एक क्रियाशील और समर्थ शक्ति हो जाती है। किंतु इन भूली हुई और दबी हुई भावनाओं को और इनकी अप्रत्यक्ष क्रियाओं को साधारणतया पुनः विचार में नहीं लाया जा सकता; उसके लिये एक विशेष पद्धति की आवश्यकता है और उस पद्धति का नाम ही "साइको-ऐनेलेसिस" है।

फ्रूड के मतानुसार मनुष्य की समस्त मानसिक शक्ति पहले उसकी कुछ आदिम प्रवृत्तियों में ही केंद्रित रहती है और उन प्रवृत्तियों में उसकी "काम-प्रवृत्ति" सर्वोपरि रहती है। सामाजिक और नैतिक प्रवृत्तियों को वे जन्मसिद्ध और एकदम शुद्ध नहीं मानते। इसलिये हमारे बहुत से नैतिक पाठकों को अपने चित्त में केवल तात्त्विक भावों को रखकर ही आगे पढ़ना चाहिए।

दूसरे, "साइको-ऐनेलेसिस" की प्रतिपादक मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों को तत्त्वतः दो जातियों में विभक्त करते हैं। एक तो ऐसे प्रकार की होती हैं जिनमें निरंतर संयोग-चेष्टा रहती है, अर्थात् वे सदैव अधिकाधिक सामीप्य और मिलन की ओर लालायित रहती हैं; दूसरी वे जो नाश और विध्वंस की भावनाओं से पूरित होती हैं—जो कुछ जीवित है उसको नष्ट करना ही उनके स्वभाव में होता है। अतः प्रथम जाति की प्रवृत्तियों को फ्रूड ने "लिबीडो" का एक विशेष नाम प्रदान किया है। जब कभी वे अपने विवेचन में काम-प्रवृत्ति की ओर लक्ष्य करते हैं तो उनका अभिप्राय सामान्य अर्थ से कहीं अधिक सविस्तर और लगभग सर्वस्पर्शी होता है। "सिंबोलिज्म" जैसे क्लिष्ट विषय का विवेचन यहाँ पर नहीं हो सकता, नहीं तो यह दिखलाया जा सकता था कि फ्रूड की "कामेच्छा" कितनी व्यापक है। गिरजे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की सीढ़ियों से लेकर बहता हुआ जल तक उसी भावना के प्रवर्तक बताए जाते हैं।

यह लेख वैज्ञानिक भाषा में और सिद्धांत की तथावत् सूक्ष्मता को लेकर नहीं लिखा गया है। सामान्य पाठकों के लिये, मनोविज्ञान की इस अनूठी विज्ञप्ति का एक संक्षिप्त समाचार सुनाना ही यहाँ पर लेखक का उद्देश्य है। अतः हम शब्दों के अधिक विस्तार में न जाकर फ्रूड के सिद्धांतों के केवल उन्नत शिखरों पर ही प्रकाश डालते हैं।

किंतु आरंभ में ही यह समझ लेना आवश्यक और लाभकर होगा कि फ्रूड के शब्दों में मनुष्य की संपूर्ण मानसिक परिभाषा, उसकी प्राकृतिक शक्तियों के उद्रेक, दमन, संघर्ष, जय, पराजय, संधि आदि भावों में ही है, मानों भिन्न भिन्न शक्तियों का मस्तिष्क के भीतर युद्ध या यातायात हो रहा हो। मस्तिष्क के विवेचन की यह एकदम अपूर्व और बहुमूल्य विधि है। यह पहला ही अवसर है जब कि मन को निरी शक्तियों के आवागमन-रूप में ही चित्रित किया गया हो।

"ओडियस कंपलैक्स"—"साइको-ऐनेलेसिस का इसे मूल आधार कहना चाहिए, और यही सबसे अधिक विरोधपूर्ण भी है।" साइको-ऐनेलेसिस पर जितने प्रहार हुए हैं वे अधिकतर इसी सिद्धांत के कारण हुए हैं। यहाँ पर इसका अर्थ यह है कि मानव-शिशु में जन्म के ठीक आरंभ से ही मैथुन की प्रवृत्ति अंतर्हित रहती है; किंतु कुछ समय तक उसका आवेश उसके अपने ही भावों के अंतर्गत रहता है। इसके बाद वही कामेच्छा बालक के स्व-प्रेम में परिणत हो जाती है जो मनुष्य में आजीवन किसी न किसी रूप में रहती ही है। ऐसे समय में वह अपने ही अंगों से प्रेम करने लगता है। इसके भी बाद जब उसका मानसिक क्षेत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बढ़ता है तब उसकी यही प्रवृत्ति दूसरे व्यक्तियों पर पड़ती है। लेकिन उस समय माता-पिता के अतिरिक्त उसके लिये और कोई इतना समीप और सप्रेम नहीं होता, अतः उसकी वही काम-प्रवृत्ति उनकी ओर लक्षित हो जाती है। यदि बालक नर होता है तो वह माता की ओर आकृष्ट होता है और यदि वह नारी होता है तो पिता की ओर उसका झुकाव रहता है। कुछ अवस्थाओं में यह विपरीत भी हो जाता है—अर्थात् नारी माता की ओर और नर पिता की ओर—या उसमें दूसरी विभिन्नताएँ भी उपस्थित हो सकती हैं।

यहाँ पर 'कामेच्छा' और 'मैथुन' जैसे शब्दों का जननेंद्रियों से संबंध रखकर उनके अर्थ नहीं लगाने चाहिएँ। इस सिद्धांत के अनुसार शिशु की प्रायः सभी क्रियाएँ मैथुन की अभिव्यक्ति के अर्थ में ली जाती हैं। उसका स्तन-पान, हाथ-पैर चलाना, काटना आदि भी कामेच्छा के रूप ही बताए जाते हैं। वास्तव में उसकी आहार-क्रियाओं और काम-चेष्टा में कोई भेद नहीं होता। बालक की काम-लिप्सा का यह प्रथम उद्रेक लगभग उसकी पाँच वर्ष की आयु तक समाप्त हो जाता है। परंतु इसी समय उसकी इस प्रवृत्ति द्वारा उत्पन्न हुए कृत्यों या स्वभाव पर समाज की ओर से, विशेष कर माता-पिता द्वारा, दमन होता है। अतः इस वयस में बालक के मन में निश्चय रूप से संयम और विरोध के भाव उत्पन्न होते हैं। अब जिस प्रकार शैशव में बालक ने अपने प्रतिबंधों और नियमन का अनुभव करते हुए अपनी दशाओं के प्रति अपने को सहयोगी बनाया है, अथवा अपनी अवस्थाओं से विद्रोह, आत्म-समर्पण या समझौता करते हुए जिस तरह उसने बाह्य वातावरण के प्रति अपनी धारणा स्थिर की है, वही उसके भावी व्यक्तित्व, मन, वृत्ति, चरित्र, कर्म, जीवन आदि सभी के मूल आधार हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"ओडियस-कंपलैक्स" का काम-तत्त्व फ्रूड की मुख्य धारणा है। साइको-ऐनेलेसिस के अन्य निष्कर्ष इसी सिद्धांत को आधार मानकर निकाले गए हैं।

मनुष्य के जीवन में कामोद्रेक की ऐसी दो अवधियाँ होती हैं। पहली अवधि पाँच वर्ष की आयु में समाप्त हो जाती है, फिर दूसरी अवधि युवावस्था से प्रारंभ होकर जीवनांत तक रहती है। लेकिन युवावस्था की दूसरी अवधि के समय उसके लक्षण बालपन के स्वभाव से भिन्न होते हैं; क्योंकि मनुष्य में शारीरिक परिवर्तन बहुत हो जाता है। परंतु तत्त्वत: उनमें कोई भेद नहीं होता। इन मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि अँगूठा चूसना और चुंबन करना वास्तव में एक ही प्रवृत्ति के दो रूप हैं। इसके अतिरिक्त यह दूसरा कामोद्रेक सर्वथा पहले उद्रेक की बुनियाद पर स्थिर होता है। अर्थात् शैशव में विद्रोह और दमन द्वारा जैसी प्रकृति बालक की बन गई है उसी के अनुसार बड़े होने पर काम-भावना के प्रति उसकी धारणा होगी। इस वर्ग के विद्वानों का दावा है कि मनुष्य के आगे के जीवन में उसकी काम-प्रवृत्ति-संबंधी जितनी समस्याएँ होंगी—जैसे विवाह का प्रश्न, दांपत्य की उलझनें, स्त्रियों या पुरुषों के मन में एक दूसरे के लिये घृणा या अत्यंत लालसा के भाव, ईर्ष्या, प्रतिद्वंद्विता, वेश्या-वृत्ति या वेश्यागमन, अप्राकृतिक मैथुन आदि—उन सभी के कारणों को, वे उसकी बालपन की अवस्थाओं और स्मृति का अध्ययन करके, स्पष्टतया बता सकते हैं; और ऐसी बहुत सी मानसिक विकृतियों को केवल मनोवैज्ञानिक परामर्श द्वारा ही दूर भी कर सकते हैं।

"अचेतन मस्तिष्क"—साइको-ऐनेलेसिस का यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और सारगर्भित भाग है। हमारी चेतना के अतिरिक्त भी हमारे मानस में कुछ भाव निगूढ़ रहते हैं, यह बात फ्रूड

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से भी पहले शौपेनहोअर और हार्टमैन जैसे विद्वानों ने कही थीं; परंतु उसका ऐसा तात्त्विक विवेचन नहीं हुआ था। दूसरे इस बात की कल्पना भी नहीं की गई थी कि मन का वह निगूढ़ भाग हमारे चेतन भाग के विरोध में रहता है और कभी कभी हमारे सचेत मस्तिष्क की एकांत उपेक्षा करते हुए अपनी इच्छा-पूर्ति के लिये हमारे शरीर और मन को अपने सीधे अधिकार में ला सकता है।

पहले कहा जा चुका है कि फ्रूड ने मन की सारी अवस्थाओं का वर्णन निरे उद्वेग और दमन के से भावों में किया है, जैसे वहाँ पर भिन्न भिन्न सेनाओं का संघर्ष हो रहा हो। लेकिन यहाँ पर विषय की और भी स्पष्टता के लिये पहले हम नकशे के ढंग पर उन शक्तियों का वर्णन करते हैं। इसके बाद उनका शक्तिमय विवेचन करेंगे।

मस्तिष्क-प्रदेश को साधारणतया तीन भागों में बँटा हुआ कहा जा सकता है। प्रथम तो हमारी वह सामान्य चेतना है जिसमें हमें अपने सभी विचारों का ज्ञान रहता है। दूसरा भाग वह है जिसको हम अर्द्ध-जागरित कह सकते हैं, जैसे अतीत की घटनाओं की स्मृति। इस जाति के सभी विचार स्मृति-चेष्टा द्वारा, उपयुक्त अवसर प्राप्त होने पर या उसी घटना से संबंध रखनेवाली किसी अन्य वस्तु के ज्ञात होने पर, तुरंत चेतना में आ जाते हैं। अंत में वह भाग है जो एकदम चेतना-शून्य है, अर्थात् व्यक्ति को जिसका अणुमात्र भी आभास नहीं होता। जब तक साइको-ऐनेलेसिस की पद्धति द्वारा एक विशेष क्रियात्मक शक्ति को उत्तेजित करके उसका ढक्कन न उठाया जाय तब तक मस्तिष्क के इस गहन भाग का हमको कोई समाचार नहीं मिल सकता।

अब दूसरे प्रकार से इसी बात को समझना और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि इसी क्रियात्मक विवेचन में साइको-ऐनेलेसिस का सारांश समझना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मस्तिष्क के जिस भाग को हमने अभी एकदम अचेत कहा था, वह अचेत है केवल हमारी उन्नत चेतना की अपेक्षा में; नहीं तो मनुष्य जब संसार में जन्म लेता है तब उसके पास इसी मूल मस्तिष्क के सिवा और कुछ नहीं होता। मस्तिष्क के इस प्राथमिक आधार में सिर्फ कुछ आदिम प्रवृत्तियों तथा मूल प्रेरणाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता, लेकिन वे अपनी निवृत्ति या संतोष के लिये, सब मिलकर किसी व्यक्तित्व या अहंकार का रूप नहीं लेतीं। "अचेतन मस्तिष्क" कभी भी हमारे सचेत मस्तिष्क की भाँति एक पृथक् व्यक्तित्व धारण नहीं करता।

मस्तिष्क के इस नितांत प्रवृत्तिमय आगार को फ्रूड "वह" के नाम से पुकारते हैं और "वह" के लिये वे लैटिन के शब्द "इड" का प्रयोग करते हैं। इस "इड" को ही वे समस्त मानव-मस्तिष्क तथा उसकी उत्पत्तियों का उद्गम-स्थल मानते हैं।

किंतु जन्म के पश्चात्, बाह्य जगत् से संपर्क होने पर, मनो-विकास के प्रारंभिक काल में ही इस "इड" का एक भाग संपूर्ण "इड" से अपना पृथक्करण कर लेता है, और मनुष्य का यही अंश उसमें व्यक्तित्व या अहंकार को ग्रहण करता है। यह उसका "मैं" बनकर समस्त प्राकृतिक एवं माननीय वातावरण से अपना संबंध स्थापित करता है। फ्रूड के नामकरण के अनुसार इसको "इगो" कहते हैं। इसे एक प्रकार का आत्मबोध कहना चाहिए। इसी के द्वारा जीव अपने में "अपने" का अनुभव करता है।

इस सचेत "इगो" और शेष "इड" में आरंभ से ही एक आलोचनात्मक संबंध होता है। "इड" के प्रति "इगो" विचाराधीश के से भाव रखता है। "इड" की सभी प्रवृत्तिमय माँगों को वह स्वीकार नहीं करता; क्योंकि "इड" का कर्म-सिद्धांत निरे सुख-दुःख के अनुभव पर निर्भर रहता है। लेकिन "इगो" मानो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार में शिक्षित होकर, सभी प्रकार से यथार्थता का अनुभव करके, प्राणी को यथोचित रूप से संचालित करना चाहता है। इसलिये "इड" की बहुत सी इच्छाओं का वह दमन भी करता रहता है। ये दबी हुई इच्छाएँ फिर लौटकर "इड" में चली जाती हैं और वहाँ पर अपने लिये एक विशेष स्थान प्राप्त करके रहने लगती हैं।

इस "इगो" से भी उन्नत मस्तिष्क में एक भाग और होता है, जिसे उसकी सबसे ऊपर की तह कहा जा सकता है। जिस प्रकार 'इड' में से एक भाग छँटकर "इगो" हो गया था उसी प्रकार 'इगो' में से भी, मन का एक अत्यंत आदर्शमय और नैतिक भाग विकसित होकर "सुपर इगो" हो गया। यह "सुपर इगो" केवल मनुष्यों में ही होता है; क्योंकि यह निरे धर्म, नीति, सदाचार, कर्त्तव्य, आदर्श आदि जैसी भावनाओं से ही संगृहीत होता है। किंतु, यद्यपि यह सबसे बाद की उत्पत्ति है फिर भी आदिम "इड" से इसका "इगो" से भी अधिक समीप का संबंध है। क्योंकि "इड" की प्रवृत्तियों की जो याचनाएँ हैं, उनकी यह "सुपर इगो" पहले एक सेंसर की भाँति परीक्षा करता है; इसके बाद वह उनकी शारीरिक पूर्ति या दमन के लिये "इगो" के सपुर्द कर देता है। यह "सुपर इगो" बाल्यकाल में ही विकसित हो जाता है और इसका आधार "ओडियस कम्पलैक्स" होता है।

मस्तिष्क की इन तीनों मंजिलों को फिर दुहराते हुए हमें यह कहना है कि उसमें सबसे नीचे का भाग "इड" है जो समस्त आदिम प्रवृत्तियों का भांडार है और मानस का मूल रूप है। दूसरा "इगो" है, जिसमें हमारा व्यक्तित्व तथा संपूर्ण चेतन-ज्ञान है। तीसरी और सबसे ऊपर की तहें मस्तिष्क में उन भावनाओं की हैं जो धर्म, नीति, सिद्धांत आदि जैसे विचारों में ही प्रदर्शित होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसको "सुपर इगो" कहते हैं और "इगो" पर इसका पूर्ण अधिकार होता है। मनुष्य की अधिकांश इच्छाओं को यह "सुपर इगो" ही दमन करके प्रचेतावस्था में भेज देता है।

इन सब मानसिक अवस्थाओं का वर्णन करने में भाषा का लाक्षणिक उपयोग बहुत अधिक किया गया है। पाठकों को यह जान लेना चाहिए कि ये बातें इतनी ही स्पष्ट और साफ कही हुई नहीं हैं। मनोविज्ञान के इस विशेष अंग की भाषा ही ऐसी है। अत्यंत सूक्ष्म वैज्ञानिक विवेचन में भी प्रायः लक्षणों और संकेत द्वारा ही वार्तालाप होता है। मन के भाग, नीचे और ऊपर की तहें आदि शब्दों को पढ़कर मालूम होता है मानो अंतराल के भीतर लंबाई, चौड़ाई और मोटाई की बनी हुई ये कुछ वस्तुएँ हैं, अथवा ये मानसिक अवस्थाएँ आकाश में आते-जाते हुए बादलों की भाँति आपस में मिलती हैं, जुदा होती हैं और अदृश्य हो जाती हैं। किंतु जिस प्रकार "मीठी बात" कहने से बात को ठीक मीठी ही कहना हमारा अभिप्राय नहीं होता, केवल एक दूसरे परिचित गुण की सहायता लेकर एक अकथनीय भाव को समझाना होता है, उसी प्रकार यहाँ पर भी यही समझना चाहिए। मानसिक अवस्थाएँ न तो वस्तुएँ हैं और न स्थितियाँ—केवल एक अनुभव, एक उद्रेक, एक क्रिया मात्र हैं।

इसके अतिरिक्त अपने ही मानस के संबंध में ऐसी विलक्षण बातें सुनकर कुछ आश्चर्य और भ्रम सा होता है। परंतु फ्रूड के कथनानुसार ये सारी मानसिक प्रक्रियाएँ इस प्रकार अपने ही आप संघटित होती रहती हैं जैसे शारीरिक प्रक्रियाएँ। जिस प्रकार हमको अपने फुफ्फुस, यकृत् आदि के कार्यों का कुछ भी सचेत अनुभव नहीं होता है उसी तरह मन के इस विभिन्न व्यापार का भी हमको कुछ ज्ञान नहीं रहता। "मैं" अर्थात् मेरा व्यक्तित्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवल "इगो" में ही संचित है। इससे बाहर की किसी भी मानसिक अवस्था से मेरा सचेत संबंध नहीं है। यही कारण है कि इस सब को मानने में बड़ी कठिनाई का अनुभव होता है।

"दमन" शब्द का प्रयोग इस लेख में कितने ही स्थानों पर हुआ है। किंतु हम अपने सामान्य चेतन जीवन में जो कुछ अपनी इच्छाओं पर दमन करते हैं, उसी तक इस शब्द का अर्थ परिमित नहीं है। फ्रूड के विचारानुसार जो दमन-शक्ति हमारे मस्तिष्क के अचेतन भाग को चेतना में आने से रोकती है वह शक्ति स्वयं भी सामान्यतया अज्ञेय है। और जो दमन-शक्ति हमारी दबी हुई भावनाओं को पुनः स्मृति में लाने के उद्योग में रुकावट डालती है वह शक्ति भी जानी नहीं जाती। दमन के इन दो रूपों को वे "Repression" और "Resistance" के नाम से पुकारते हैं, और हिंदी में इन दोनों शब्दों को क्रमशः "दमन" और "प्रतिरोध' में अनुवादित किया जा सकता है। "दमन" वह है जो हमारे अचेतन के विचारों को चेतना में नहीं आने देता और "प्रतिरोध" वह है जो हमारी विस्मृति को अधिकाधिक गहरी बनाता है। वास्तव में यह एक ही शक्ति के दो रूप हैं और इन दोनों का हमको सीधा अनुभव नहीं होता।

अतः हमारी बहुत सी भावनाओं का दमन हमारे बिना जाने भी होता रहता है। उस दमन का प्रभाव परोक्ष रूप से हमारे चरित्र पर पड़ता है परंतु अपने प्रतिरोध के कारण हम उसके मूल कारण को नहीं जान सकते। इसको स्पष्ट करने के लिये मनोविज्ञान के आधुनिक पंडित श्री W. H. Rivers का दिया हुआ एक उदाहरण हम यहाँ देते हैं।

राईवर्स का रोगी एक डाक्टर था। अपनी युवावस्था में वह प्रायः हकलाने लगता था और शीघ्र ही उत्तेजित या श्रांत हो जाने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का उसका स्वभाव था। लेकिन कभी कभी जब वह किसी तंग और ढके हुए स्थान में चला जाता था तो उसे एक विचित्र बेचैनी और घबराहट का अनुभव होने लगता था। अनेक बार तो वह नितांत भयभीत भी हो जाता था। किंतु सदैव से उसका ऐसा ही स्वभाव था इसलिये वह समझता था कि बहुत से मनुष्यों की तरह उसमें भी यह एक सामान्य और स्वाभाविक गुण है। परंतु गत महायुद्ध के समय जब वह रणभूमि में गया और उसे खुदे हुए तंग खोहनुमा स्थानों में सोने का अवसर मिला तो उसकी विपत्ति एकदम तीव्र हो उठी, और प्रायः अपनी जान की भी परवाह न करके वह खुली हुई खाइयों में ही सोने लगा। परंतु फिर भी दिन पर दिन उसकी मानसिक दुर्बलता बढ़ने लगी। उसका हक-लाना, सिरदर्द और चित्त-मालिन्य एकदम बढ़ गए। रात्रि में वह सो नहीं सकता था और यदि सो भी जाता तो उसे युद्ध के भयंकर स्वप्न दिखलाई पड़ते थे। अंत को बड़ी क्लांत अवस्था में वह अस्पताल पहुँचाया गया।

राईवर्स ने पहले उससे उसके सब स्वप्न लिखवाए और बाल-पन की जिन घटनाओं को वह याद कर सके उनको भी उससे पूछा। अंत में उसे एक घटना याद पड़ी जो कि केवल उसकी चार वर्ष की आयु में घटित हुई थी। उस उम्र में वह एक दिन एक ऐसे बूढ़े आदमी के पास गया था, जो कि बालकों को उनको राह में पड़ी पाई हुई पुरानी-धुरानी वस्तुओं के बदले में आधी पेनी दिया करता था। लेकिन जब वह वहाँ से लौटने लगा तो उसे रास्ते की ंग और अँधेरी गली का मुँह बंद मिला। दरवाजा खोलने के लिये वह बहुत छोटा था, अतः वह बड़ा घबराने लगा। इसी समय गली के दूसरे सिरे पर एक बड़े कुत्ते ने भूँकना आरंभ कर दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस रोगी ने जैसे ही इन सबको याद किया, उसे अपने बाल्य-काल के इस आघात का स्पष्ट स्मरण होने लगा और वह कहने लगा कि इस घटना के बाद फिर कभी वह उस मकान के समीप होकर भी नहीं निकला। इस मनुष्य के 'भय' रोग का मूल कारण यही था; क्योंकि इसे एक बार जान लेने के पश्चात् उसकी दशा सुधरने लगी और शरीर की सारी व्याधियाँ दूर हो गईं। बात यह थी कि भय का एक प्रबल अभिघात बिना उसकी समझ में आए ही उसके मन के अचेतन भाग में दब गया था। अब जैसे ही उसने अपने रोग की यथार्थता को पहचाना, वह अच्छा हो गया। रोगी की मानसिक विकृति के मूल कारणों को खोजकर उसके परिपक्व विचार में ले आना और उनकी क्षुद्रता को उसके सामने स्पष्ट करके दिखा देना, यही इन मनोवैज्ञानिकों की चिकित्सा-प्रणाली होती है।

इसी प्रकार जिनका "सुपर इगो" अत्यंत प्रबल होता है, जिनकी संस्कृति में आरंभ से ही धर्म तथा आदर्श के भाव असाधारण महत्त्व लेकर जम जाते हैं, उनके अंदर भी दमन बड़ा शक्तिमान् और अज्ञेय होता है। परंतु कभी कभी वह भी "अचेतन मस्तिष्क" की इच्छाओं के वेग को रोकने में असमर्थ होता है। इसके उदाहरण में हम एक स्त्री की अद्भुत प्रेम-कथा का वर्णन देते हैं।

वह स्त्री कहती थी कि एक अपरिचित पुरुष उस पर आसक्त हो गया है और बहुत दिनों से उससे बलपूर्वक विवाह करने के आयोजन में है। वह स्त्री युवावस्था से काफी दूर पहुँच चुकी थी। उसने विवाह नहीं किया था, और वह एक अत्यंत पवित्र जीवन व्यतीत करती थी। परंतु एकाएक उसने अपने मित्रों से यह कहना आ भ कर दिया कि अमुक व्यक्ति उस पर बुरी नजर डालता है। धीरे धीरे उसकी यह शिकायत बढ़ने लगी और कुछ दिनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाद उसके कथनानुसार वह पुरुष उसका पीछा भी करने लगा। अंत में वह इस विषय में बड़ी उग्र हो उठी। उसे विश्वास हो गया कि वह उसे बलपूर्वक भगा ले जाने की दिन-रात युक्तियाँ किया करता है। अतः उसने पुलिस से सहायता माँगी। परंतु जाँच करने पर मालूम हुआ कि जिस पुरुष का वह नाम लेती है उसे उस स्त्री के अस्तित्व का बहुत ही क्षीण आभास है। किंतु वह अब भी अपनी शिकायतों पर जोर देती थी। आखिर उसे पागलखाने भेज दिया गया। लेकिन उसका फिर भी यही विश्वास रहा कि उसके दुष्ट प्रेमी ने अपना आशय पूरा करने के लिये उसे पागलखाने भिजवा दिया है।

परंतु वास्तव में बात यह थी कि बहुत समय से वह अपने अभ्यंतर में प्रेम और संयोग की कामनाओं को दबा रही थी। उसकी पवित्रता ने कभी संयोग जैसी घृणित भावना का अस्तित्व अपने में स्वीकार नहीं करने दिया। अतः अपनी इस निगूढ़ भावना का विरोध करने के लिये, अपने मानस के भीतर ही उसने धर्मादर्श की एक रक्षिणी सेना तैयार कर ली थी। परंतु एक दिन सुहावने समय में किसी तरह एक पुरुष उसकी दृष्टि में समा गया। उस स्त्री के मन का जो अवरुद्ध भाग था उसके कपाट एक क्षण के लिये खुले और उस पुरुष की मूर्ति को लेकर फिर बंद हो गए। उसको इस व्यापार का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं हुआ; क्योंकि दमन और दबी हुई इच्छाएँ दोनों ही अज्ञात होते हैं।

इसके बाद उस पुरुष की स्मृति को उसका अचेतन मस्तिष्क बार बार चेतना में लाकर अपने संतोष की याचना करता था परंतु उस स्त्री की धर्म-परायण मनोवृत्ति, उस पुरुष के रूप को, प्रेम और संयोग के भावों से संवद्ध रखकर अपनी चेतना में ग्रहण करना नहीं चाहती थी। अतः सचेत भाग की रक्षिणी सेना ने पहले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस पुरुष को अपने कपड़े पहनाकर, अर्थात् उसे दुराचारी और सतीत्व का शत्रु बनाकर, तब उसके चित्र को स्त्री के आदर्शमय विचारों में आने दिया। मस्तिष्क के अचेतन और सचेत दोनों भागों का यह एक तरह से समझौता हो गया। "अचेतन" अपनी संयोग-कामना से व्याकुल होकर उस पुरुष के चित्र को स्त्री के सचेत मस्तिष्क में घुसाना चाहता था; उसे सफलता मिली। साथ ही उसके आदर्शमय भाग ने भी अपनी धार्मिक वृत्ति की रक्षा का उपाय ढूँढ़ लिया था।

दमन के इससे भी उत्कट रूप में प्रायः यह भी होता है कि एक ही मनुष्य के भीतर दो व्यक्तित्व उत्पन्न हो जाते हैं। उसकी दो विपरीत भावनाएँ अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये उसके मन और शरीर का पृथक् पृथक् प्रयोग करती हैं। इसको स्पष्ट करने के लिये हम डा० जैनट का दिया हुआ एक रोचक उदाहरण यहाँ पर देते हैं।

समुद्र के किनारे के पास ही के एक स्थान में एक स्त्री और उसका पुत्र रहता था। उन दोनों की जीविका का साधन एक छोटी सी दूकान थी। परंतु लड़का अपने इस संकुचित और शांत जीवन को पसंद नहीं करता था। अवकाश के समय वह दूकान छोड़कर जहाजियों की घटना-परिपूर्ण वार्ता सुनने के लिये शराबखाने या जलपान-गृहों में चला जाता था और वहाँ पर उसे अपने जीवन से और भी घृणा होने लगती थी। लेकिन इसी समय, एक दिन, वह एकाएक घर से गायब हो गया।

बहुत दिनों के बाद, किसी दूसरे शहर में, एक दिन एक फेरी लगाकर बर्तनों की मरम्मत करनेवाला अपने सहायक लड़के के साथ खूब शराब पीकर अपना त्योहार मना रहा था। इतने में ही वह लड़का भी चिल्ला उठा—"यह मेरी माता का जन्म-दिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है।" साथ ही उसने यह भी याद किया कि वह वही लड़का है जो अपनी माता के पास अमुक स्थान में रहता था, जहाजियों के वृतांत्त सुनता था और अपने गृह-जीवन से घृणा किया करता था। परंतु इस पूर्वस्मृति के आते ही, बीच के समय में जो कुछ उसने किया था उस सबको वह भूल गया। बाद में जाँच करने पर मालूम हुआ कि वह अनेकानेक कठिनाइयाँ उठाता हुआ, माल ढोने की बड़ी बड़ी नौकाओं पर नौकरी करके तथा अन्य तरह तरह के धंधों में पड़ने के उपरांत, अंत में उस बर्तनवाले के पास पहुँच गया था।

उसके घटनाप्रिय स्वभाव पर जहाजियों की विचित्र कहानियों द्वारा जो चित्र अंकित हो गए थे, उन्हीं को वह अपने वास्तविक जीवन में देखना चाहता था; परंतु अपनी अवस्थाओं से वह लाचार था, अत: उसकी दबी हुई इच्छाओं ने अज्ञात में ही अपने आशय को पूरा करने के लिये इस मार्ग का अवलंबन किया था।

यह वृत्तांत और ये घटनाएँ बहुत स्पष्ट हैं। दमन थोड़ा और बहुत सभी व्यक्तियों में होता है, परंतु सभी में ऐसे लक्षण दिखाई नहीं पड़ते। हर एक व्यक्ति अपनी स्थितियों के अनुसार अपने विशेष ढंग से व्यवहार करता है। दमन का प्रभाव मनुष्य में दो प्रकार से व्यक्त होता है। कुछ लोगों में तो हिस्टीरिया के लक्षणों में या विभाजित व्यक्तित्व में उसका रूप प्रकट होता है और कुछ लोगों के लिये दमन का सबसे अधिक प्रभाव उनकी मनोवृत्ति पर पड़ता है। ऐसे लोगों में निरुत्साह, जीवन की ओर से निराशा, स्वयं ही से घृणा, चित्त में हर समय पाप का सा अनुभव, निश्चय में दुर्बलता, आदि अनेक रुग्ण वृत्तियाँ उनके मानस को छांत कर देती हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से मनुष्यों के स्वभाव में हमको जो छोटी छोटी विचित्रताएँ दिखलाई पड़ती हैं—जैसे अपने किसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंग की स्वच्छता के विषय में अत्यधिक ध्यान देना, बंद या खुले स्थानों में या पानी में असाधारणतया घबराना, जोर के शब्दों का असह्य होना या किसी जाति के जानवरों से विशेष रूप से डरना आदि—ऐसी सब अकारण और अतिमात्र वृत्तियाँ किसी दमन का ही परिणाम होती हैं।

हिस्टीरिया, पागलपन और क्लांत मनोवृत्ति के रोगियों से लेकर बड़े से बड़े बुद्धिमानों तक के जीवन में, उनके चरित्र और कृत्यों में दमन-प्रक्रिया के चिह्नों की पहचान की जा सकती है। उनमें केवल अभिव्यक्ति और उत्कटता का भेद होता है। मूल कारण सबके समान होते हैं।

लेकिन इन सब अस्वस्थ परिणामों के बदले में कभी कभी दमन के द्वारा ही हमारे स्वभाव में उत्कृष्ट और आध्यात्मिक भावनाएँ भी उत्पन्न हो जाती हैं। बहुत से स्वस्थ और सामान्य व्यक्ति जिस तरह अपनी अनैतिक और नग्न भावनाओं को दबाते रहते है, उसी तरह वे अपनी बहुत सी उच्च और पवित्र आकांक्षाओं को भी मुक्त नहीं कर सकते। अवस्थाओं के कारण हमारे आत्म-संयम में अच्छा बुरा सब ही दब जाता है। इसी को लेकर फ्रूड ने अपनी "The Ego and the Id" नामक पुस्तक में बड़े मार्मिक ढंग से लिखा है "The normal man is not only far more immoral than he believes, but also far more moral than he has any idea of."

अत्यधिक दमन का परिणाम जिस प्रकार हिस्टीरिया, उदासी या विभाजित व्यक्तित्व जैसे रुग्ण लक्षणों में प्रकट होता है, उसी प्रकार किसी किसी व्यक्ति में वह अति विशिष्ट और धार्मिक वेष में होकर भी सामने आ सकता है। ऐसे ही लोगों को हम महापुरुष, महात्मा या महर्षि के नाम से पुकारते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि, चित्रकार, धर्मात्मा आदि सभी प्रकार के महापुरुष—इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार—कामेच्छा को उसके उत्कृष्ट रूप में व्यक्त करते हैं। इस रोचक विषय का विस्तार बहुत बड़ा है। "Sublimation" नामक अपने एक सिद्धांत द्वारा वे लोग इसका बड़ा सूक्ष्म विवेचन करते हैं। ओटो रैंक नामक एक विद्वान् ने इस विषय पर काफी ब्योरे और दलील के साथ लिखा है। परंतु इस संबंध में शायद वे आवश्यकता से अधिक कह जाते हैं और उनकी पूरी बात मानने में गंभीर शंकाएँ उठती हैं।

उचित दमन करते हुए अपना सामान्य जीवन व्यतीत करते रहने में भी यह बात जानने योग्य है कि हमारी इच्छाओं का थोड़ा-बहुत काल्पनिक संतोष होता ही रहता है। अपनी सजग और सचेष्ट अवस्था में ही हम अपनी विपरीत भावनाओं का पूर्ण दमन कर सकते हैं। रात्रि को, जब कि हमारी मनःशक्ति जागरण की अपेक्षा निर्बल होती है, हमारी दबी हुई इच्छाएँ अपनी निरंतर ऊपर आने की चेष्टा में मानों बहुत कुछ सफल हो जाती हैं। इसी को हम स्वप्न कहते हैं।

फ्रूड ने स्वप्न का भी बड़ा महत्त्वपूर्ण विवेचन किया है। कहा जाता है कि इनसे पहले किसी ने इस विषय को इतना विचार और इतना महत्त्व प्रदान नहीं किया। इस विषय के उनके सिद्धांत अभी सर्वमान्य नहीं हैं, किंतु फिर भी उनका औपयोगिक महत्त्व बहुत है। साइको-ऐनेलेसिस की पद्धति द्वारा स्वप्नों का विश्लेषण करने से मनुष्य के गहन मस्तिष्क का सुलभ रीति से पता लग जाता है और इस ज्ञान से उसकी दुरवस्था को दूर करने में पूरी सहायता मिलती है।

इस सिद्धांत के अनुसार "स्वप्न" हमारे मस्तिष्क की मैशीन में एक ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा "अचेतन" में दबी हुई हमारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्छाएँ एक काल्पनिक संतोष का मार्ग पाती हैं। इस वर्ग के विद्वान् स्वप्न को उसके दो स्थलों में बाँटते हैं। एक तो उसका वह निदर्शन है जो कि नींद में हमारे सामने प्रकट होता है। दूसरा उसका वह मूल रूप है जिसके आधार पर इस स्वप्न-निदर्शन की उत्पत्ति हुई है। स्वप्न का मूल अभिप्राय स्वप्न-दृश्य तक परिणत होने में इतना परिवर्तित हो जाता है कि उसकी पेचीली मानसिक क्रिया को ब्योरे में समझे बिना उस पर विश्वास लाना कठिन है। स्वप्न के प्रत्यक्ष रूप को उसकी आदिम प्रेरणा का एक अनुवाद मात्र कहना चाहिए। लेकिन यह अनुवाद किस प्रकार और क्यों होता है? और आदिम प्रेरणा की उत्पत्ति भी किस प्रकार हुई, इसके लिये बहुत कुछ कहने की आवश्यकता है।

स्वप्नों को निरी शासित इच्छाओं का उद्रेक ही नहीं समझना चाहिए। इसमें भय, आशा, आदर्श आदि अनेक प्रकार की भावनाएँ मिली रहती हैं। परंतु इनके आधार में इच्छा-शक्ति ही होती है। दूसरे, प्रत्येक स्वप्न प्राणी की नींद सुरक्षित रखने के लिये एक प्रकार की युक्ति है। नींद के समय जब किसी इच्छा का आवेश भीतर से उठकर मनुष्य के मन में आना चाहता है तब स्वप्न द्वारा उसका बीच ही में एक काल्पनिक संतोष हो जाने से, वह उसके विश्राम में बाधा नहीं पहुँचाता। बालकों के, किसी एकदम सीधे स्वप्न में, प्रायः यह होता है कि भूखा आदमी किसी बड़े भोज में सम्मलित होता है या प्यासा आदमी खूब पानी पीता है। ऐसे सीधे स्वप्न बहुत ही कम होते हैं और बड़ी उम्रवालों के अधिकांश स्वप्नों में तो पूरी जटिलता रहती है।

दूसरी तरह से स्वप्न, जागरण और निद्रा के मध्य में एक ऐसा प्रादुर्भाव है जिसमें हमारी अनेक असंतुष्ट और अनियंत्रित भावनाओं का एक विचित्र सम्मेलन होता रहता है। हमारे भीतर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही जो एक विरोध चल रहा है उसकी त्रस्त सेनाएँ विजेता के सो जाने पर उसके कैंप पर धावा मारना चाहती हैं। लेकिन सचेत जीवन का राजा अपनी संपूर्ण सेना सहित निश्चिंत होकर नहीं सो जाता है। उसकी अधिकार-परिधि के संतरी अब भी जगे हुए हैं। अतः उन हारे हुए व्यक्तियों को अपना उद्देश्य जब आक्रमण और विजय में परिणत होता हुआ नहीं दिखाई पड़ता है तब वे, मानो किसी प्रकार रक्षकों से समझौता करके, विजेता की फौज की वर्दी पहनकर, स्वप्न के रूप में, केवल थोड़ी देर के लिये, चेतना-क्षेत्र में घूमकर ही अपने में संतुष्टि का अनुभव कर लेते हैं।

बहुत से पाठकों के लिये यह एक अद्भुत और रोचक विषय रहा होगा, किंतु बहुत सी नैतिक आत्माओं को इससे कष्ट भी पहुँचा होगा। लेखक उनसे क्षमा का प्रार्थी है। परंतु दुःख का विषय है कि हमारी व्यक्तिगत पसंद और हमारे व्यक्तिगत आदर्श प्रकृति और मानव की अद्भुत रचनाओं पर कोई प्रभाव नहीं डालते। इन सिद्धांतों को वर्तमान रूप के स्थायित्व का कोई निश्चय नहीं है। उनमें सुधार भी हो सकता है और उनके बहुत से भाग परिवर्तित भी किए जा सकते हैं, परंतु इससे इनकी महत्ता जरा भी कम नहीं होती। पृथ्वी, आकाश और समय-संबंधी ऐसे दृढ़ और सर्वमान्य सिद्धांतों को भी ऐंसटाइन ने आकर भ्रम में डाल दिया और "ईथर" के, जिस पर कि समस्त विज्ञान स्थित हो रहा है, अस्तित्व के विषय में भी गंभीर शंकाएँ उठाई जा रही हैं। यह विज्ञान का भवन है; इसके प्रत्येक भाग का एकदम शुद्ध और सत्य होना अनिवार्य्य है। इसी लिये इसके ईमानदार मिस्त्री जरा सा भी विरोध दिखाई देने पर उसे तुरंत सुधार या बदल देते हैं। "मानव-विचार के इतिहास में सिगमंड फ्रूड का नाम उतना ही बड़ा है जितना कि चार्ल्स डारविन का"—यह श्रीयुत वेल्स जैसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महापुरुष का कथन है। और यह है भी एकदम उचित; क्योंकि डारविन ने यदि मानव-जाति का विकास दिखाया है तो फ्रूड ने मानव-मस्तिष्क का विकास बताया है।

इनके सिद्धांतों को कोई माने या न माने, किंतु उनकी उपेक्षा या अवहेलना करना अपने ही अज्ञान का परिचय देना है। जन-साधारण या बहुत से रूढ़िबद्ध विद्वान् साइको-ऐनेलेसिस को भली भाँति समझे बिना ही जब उसे घृणित बताने लगते हैं तब उससे फ्रूड या उनके सिद्धांतों का तो कुछ नहीं बिगड़ता परंतु एक अनिष्ट अवश्य हो जाता है। उससे अपरिचित पाठकों के मन में एक ऐसा दुराग्रह उत्पन्न हो जाता है कि भविष्य में भी वे अपने तत्संबंधी ज्ञान को बलपूर्वक रोकते रहते हैं।

इस लेख में लेखक ने अपनी निजी सम्मति को बिल्कुल रोक लिया है। यह केवल वर्णनात्मक विवेचन है। परंतु आधुनिक शिक्षित जगत् के विचारों में इस मनोवैज्ञानिक प्रगति ने जो युगांतर उपस्थित कर दिया है और उन लोगों के जीवन पर जितना इसका प्रभाव पड़ा है उससे यथाशक्ति परिचय कराने का प्रयत्न अवश्य किया गया है; लेकिन उसमें सफलता तभी मिल सकती थी जब कि समाज-शास्त्र, राजनीति, कानून, शिक्षा, साहित्य और कलाएँ, धर्म, औषध-विज्ञान और मानव-विकास जैसे दूर के और गंभीर विषयों पर भी साइको-ऐनेलेसिस का क्या और कितना अधिकार है, इस पर भी कुछ प्रकाश डाला जाता। लेकिन यह स्थान सावकाश वार्तालाप करने का नहीं है।

फिर भी जो कुछ ऊपर कहा जा चुका है उसी के आधार पर, यहाँ पर कम से कम एक तथ्य पर जोर डालते हुए, हमें यह कहना है कि मानव-स्वभाव के अध्ययन में फ्रूड की यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है कि हमारे मानस में भावनाओं के कितने ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छोटे छोटे टुकड़े दबे हुए और अचेत पड़े रहते हैं। अचेतन में भी उनकी एक क्रियाशील चेष्टा सदैव जागरित रहती है और उनका हमारे जीवन तथा चरित्र से बड़ा गहरा संबंध है। फ्रूड की खोज के द्वारा हमको मन की क्रियाओं का बहुत सा उपयोगी ज्ञान प्राप्त हुआ है। अचेतन में जो उद्दंड प्रवृत्तियाँ या इच्छाएँ एकत्र हो रही हैं उनको सुमार्ग पर लाकर जीवन को स्वस्थ और सुचारु रखना साइको-ऐनेलेसिस का प्रथम कर्तव्य है। तथा मन में विरोध को रोकना, और उसे संघर्ष से सुरक्षित रखने के उपायों को जानकर आरंभ से ही मनुष्य की शिक्षा में उनका उपयोग करना, एक अत्यंत उत्साहजनक और विराट् उद्योग है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१४) द्विगर्त (डुगर) देश के कवि

[लेखक—ठाकुर कांतसिंह बिलौरिया, जम्मू]

द्विगर्त देश में, जिसे लोग डुगर देश कहते हैं और जिसका प्रधान नगर जम्मू है, कई एक कवि हो चुके हैं। यद्यपि उन कवियों की कविताएँ इस देश में अधिकता से पाई जाती हैं, परंतु उनके प्रकाशन का कोई प्रबंध न होने से कोई उनके नाम तक नहीं जानता। कई वर्ष हुए, हमने प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों की खोज के प्रधान मंत्री को काश्मीर देश में भी यह काम प्रारंभ करने को लिखा था परंतु वहाँ से हमें कोरा जवाब मिला। हमारा दृढ़ विश्वास है कि जम्मू काश्मीर देश में हस्त-लिखित पुस्तकों के सैकड़ों भांडार हैं जो आज तक प्रकाश में नहीं आए और प्रतिदिन पुस्तकें नष्ट-भ्रष्ट होती जा रही हैं। आज हम नागरीप्रचारिणी पत्रिका के पाठकों को एक महाकवि दतू (देवदत्त) जी की हिंदी-कविता का एक नमूना दिखलाने का साहस करते हैं। यदि अवसर मिला तो हम इनकी और इस देश के दूसरे कवियों की रची कविताओं का वर्णन करेंगे। कवि दतूजी बिलौर के समीपस्थ ग्राम सुकराला के वासी भडवाल (पंडूवंशी) राजा पृथ्वीपाल के पुरोहित-वंश के गौड़ ब्राह्मण थे। आप जम्मूपति महाराजा रणजीतदेव के कृपापात्र थे। आपके रचे हुए कई ग्रंथ हैं, जिनमें से कुछ मेरे दृष्टिगोचर हुए हैं। इनके अतिरिक्त आपने भिन्न भिन्न विषयों पर कविताएँ की हैं। आप संस्कृत के भी पंडित थे। ज्योतिष पर भी आपके रचे कई पद पाए गए हैं। आपने एक सवैया घटित चंद्र पद लिखा था जो इस प्रकार है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेष को आद[1] कुलीद को दूसरो,[2]
तीसरो है तुल[3] को दुख दानो।
चौथो कह्यो धन[4] को वृष[5] को,
पुनि पंचम सिंह[6] को छाट ही मानो॥
वृश्चिक[7] सप्तम मकर[8] को अष्टम,
मिथुने[9] नव कन्या[10] को दश मानो।
कुंभ[11] को दत्त एकादश मीन[12] को,
द्वादश घटति निशापति जानो॥

महाराजा रणजीतदेव ने इन्हें महाभारत को कविता में लिखने की आज्ञा दी। इस पर इन्होंने द्रोणपर्व को कविताबद्ध कर प्रत्येक श्लोक को यथाक्रम दोहा चौपाई छंद कवित्त सवैया छप्पय सोरठा में रचकर इस पुस्तक का नाम वीर-विलास रखा। वीर-विलास की कविता अति मनोहर है। आदि में भगवान् शंभु और भगवती की स्तुति, फिर महाराजा और उनके युवराज वृजराजदेव का गुण-गान और अपने वंश का संक्षिप्त उल्लेख है। इस ग्रंथ का रचना-काल विक्रम सं० १८१८ है। इसका विवरण इस भाँति दिया है।

दोहा—संवत वसु शशि वसु शशी शुक्लपक्ष मधु मास।
वीरवार तिथि पंचमी वर्ण्यो वीर-विलास॥

यह बड़ा भारी ग्रंथ है। यदि समय मिला तो प्रकाशित कराया जायगा। दूसरी कविता में वृजराजदेव की चढ़ाई वर्णित है। इसका नाम आपने वृजराज-विजय और वृजराज-पंचाशिका लिखा है। इसी कविता को यहाँ प्रकाशित करने का यत्न किया गया है। तीसरी कविता अमृत-वियोग है। यह कविता राजा अमृतपाल बिलौरपति के स्वर्गवास पर लिखी गई थी। राजा अमृतपाल बिसो-हल (विश्वस्थली) राज्य के स्वामी जम्मूपति महाराजा रणजीतदेव के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दामाद थे। ये विक्रम संवत् १८३४ में, ३२ वर्ष की आयु व्यतीत कर, स्वर्ग पधारे थे। कवि देवदत्त इसी डुगर प्रांत के निवासी थे। इस कारण इसमें इस देश की भाषा की कुछ झलक पाई जाती है। यथा—

अथ श्री वृजराज-विजय-वर्णनम्

सोरठा—पूजों श्री गुरुदेव सकल देव-मूर्ती विमल।
जा प्रसाद कछु भेद पायो दत्त कवित्त को ॥ १ ॥
भूपति-पति रणजीत साईं जम्मू नगर को।
पीत वसन सों प्रीति धरत रहो चिरंजीत ही ॥ २ ॥
रघुकुल-नीरधि-चंद ता नंदन वृजराज दे।
यदुनंदन पग वंद वंदित रहो अनंद सों ॥ ३ ॥

कवित्त

बड़ो रीझवार श्री राजा रणजीतदेव,
जाने सब भेद संत साधन में रत हैं।
कियो आछें सेर जसमेर सिरषा बहु,
पेमियाँ लाजपे न आयो बलवत हैं ॥
मारी काश्मीर औ कुलिंग दौरि कर लीन्हों,
ताही मारबे को क्यौंहुँ मुकरत हैं।
देखि देखि रीझे कवि देवदत्त दूसरी में,
सिंह काज राज दे रवैाली उतरत हैं ॥ ४ ॥

अथ उद्योग-मूल-वर्णनम्

दोहा—एक दिवस चंब्याल को दूत पुकार्‍यो आइ।
बाँको दुर्ग पठयार को लियो कटोचदि नाइ ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—एक दिन चंब्याल (चंबापति) के दूत ने आकर पुकार की कि उनका पठियार का किला कटोच राजा (कांगड़ापति) ने छीन लिया है। (चंबा का राजा रायसिंह वृजराजदेव युवराज महाराजा रणजीतदेव) का श्वशुर था।

सोरठा—यों सुन उठ्यो रिसाय साईं जंमू नगर को।
ता छिन लियो बुलाइ लाइक सुत वृजराजदे ॥ २ ।

भावार्थ—यह सुनकर जम्मूपति (महाराजा रणजीतदेव) क्रुद्ध हो गए। उन्होंने उसी समय अपने योग्य पुत्र वृजराजदेव को बुला लिया।

सोरठा—कह्यो बचन समुझाय महाराज वृजराज सों।
दूर करो तुम जाय बढ़्यो गर्व कटोच को ॥ ३ ॥

भावार्थ—महाराजा ने वृजराजदेव को आज्ञा दी कि तुम जाकर कटोच का गर्व (अभिमान) तोड़ो, अर्थात् कांगड़ापति को विजय कर चंब्यालों का दुर्ग छुड़ा दो।

दोहा—अजमतदे मनकोटिया शमशेरचंद हंताल।
दत्त विलावर को धनी राजा अमृतपाल ॥ ४ ॥
रत्नदेव जसरोटिया अरु जैसिंह बंध्राल।
इन भूपन को संग ले करो गमन तत्काल ॥ ५ ॥

भावार्थ—अजमतदेव मनकोटिया (मानकोट का राजा), शमशेरचंद हंताल (हंताल देश का स्वामी), बिलौर का राजा अमृतपाल (महाराजा का दामाद), रत्नदेव जसरोटिया (जसरोटा का स्वामी) और बंध्रालता का स्वामी जयसिंह, इन सब राजाओं को संग लेकर तुम शीघ्र (युद्ध) की तैयारी करो।

सवैया

कोप किए वृजराज चढ़्यौ जब ही महाराज की सासन पाइ के।
साथ लिए नृप डुगर के पुनि हाथ धरे हथियार बनाइ के ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राखी भरोसो बड़ो कवि दत्त चले यदुनाथ को माथो नवाइ के।
देश विदेश में धूल उठी जब डेरे किए हरिमंदिर जाइ के ॥ ६ ॥

भावार्थ—महाराजा की आज्ञा पाकर वृजराजदेव ने क्रोधवश हो चढ़ाई कर दी। डुगर देश के सब राजाओं सहित, अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर, कृष्ण भगवान् को माथा नवाया और उनके भरोसे प्रस्थान किया। उनकी सवारी इत्यादि से धूल उड़ने लगी। इस तरह हरिमंदिर में जाकर (जंबू से २१ मील पूर्व) डेरे डाल दिए।

सवैया

आगे प्रताप चल्यो तिह पाछे हसौल मियाँ बलवंत सिधारयो।
ताहि के पाछे बड़ो दल आवत सागर लौं कवि दत्त निहारयो॥
सूझत सूर ता धूर छप्यो जब तूर्ज-घोष आकाश पसारयो।
पीछे चल्यौ मियाँ रतनदेव जो रण जाइ कहूँ न निवारयो ॥ ७ ॥

भावार्थ—आगे प्रबल प्रताप, उसके पीछे सेनापति मियाँ बलवंतदेव (प्राणी मंडी जम्मू का) चला। उसके पीछे समुद्र की तरह भारी दल था। उसकी धूल से सूर्य छिप गया। उसके पीछे मियाँ रत्नदेव जमुआल था, जो रण से कभी विमुख नहीं हुआ था। इस तरह यह सेना कोटाडा पर चढ़ी।

दोहा—आयुध भूषण तुरँग पट सब के सबहिं सुहात।
दत्त मोरछर पँखन सों भूप पछान्यो जात ॥ ८ ॥

भावार्थ—शस्त्र, भूषण, घोड़े, वस्त्रों से सारे योद्धा विभूषित थे; केवल मोरपंख की झालर से राजा की पहचान होती थी।

सोरठा—आगे चलत निशान मत्त मतंग तमूरचे।
जनु साहब की शान देखि दत्त हुलसत हिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—आगे निशान, पीछे हाथी, बाजे इत्यादि थे, मानो बादशाही ठाट था, जिसे देखकर अत्यंत आनंद प्राप्त होता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सवैया

ह्वै असवार खड़े सरदारहि राजकुमार के ओर हि जाके।
राखत पाइ रकेब मियाँ बृजराज जबै अतिही छबि छाके॥
एकहि बार बजे डफ दुंदुभि भेरि चले पुनि चारु पताके।
ताही समै कवि दत्त भनै मोहिं लागत नीकि नकीब की हाँके॥१०॥

भावार्थ—ज्योंही बृजराजदेव ने घोड़े की रिकाब पर पैर रखा त्योंही सब सर्दार सवार होकर राजकुमार के पास आ गए। फिर एक ही साथ बाजे बजने लगे और ध्वजा फहराने लगी।

दोहा—करत कूच दरकूच पुनि चले वीर धरि धीर।
वेगहि पहुँचे जाइके एरापति के तीर॥ ११॥

भावार्थ—वीर लोग धैर्य धारण कर प्रति पड़ाव कूच करते हुए चले और जल्दी ही जाकर एरापति (रावी) नदी के तीर जा पहुँचे।

सवैया

पार गए असुआर पगारहिं पाइ के नाव चढ़ाइ लँघाए।
वेग चले न कहूँ ठहरात रसात सबै मछिभौन में आए॥
आइ मिल्यो पृथीसिंह महीपति काज सूरे जिनके मन भाए।
साथ लिए सिगरे दल साजि के राज के ताल निवेश लगाए॥१२॥

भावार्थ—घुड़सवार नदी के पार उतर गए और पैदल फौज को नाव पर चढ़ाकर पार उतारा। वहाँ से चलकर सारा दल बिना रोक-टोक माछीभौन ग्राम में पहुँच गया, जहाँ नूरपुराधीश राजा पृथ्वीसिंह अपनी फौज लेकर आ मिले, और रात को राजा के ताल पर डेरा लगाया।

दोहा—आयो दल जम्वाल को यों सुनि लहैं न चैन।
बोले लोक कटोच के देवदत्त यह बैन॥ १३॥

भावार्थ—जम्मूपति की फौज के आने का समाचार पाकर काँगड़ा के लोग अत्यंत भयभीत होकर कहने लगे कि—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवित्त

तदांही वभूरा असां जेहलूँ चव्यालाँ
बोल खुस्सया पठियारा मत की तीजा ग्वालां दी।
गाहणेही लंघी उत नदी खरी भारीहण
माछीभौन आइ उंदे फौज जमुआलां दी॥
अजेक ले मंझ मिली लेहण सांगुलेरियां जो
पेसीहुण चाल उन्हा कन्ने डडुहालां दी॥
वप्पडे सवैऐ बड़ा जोर पाइ मिली जांगे
बोल्यो उत रहसी वपाचैड जसुआलां दी॥ १४॥

(यह कवित्त काँगड़ा देश की भाषा में है। इस देश की भाषा को 'पुआदी' कहते हैं। कवि दतूजी ने उसी भाषा में इस कवित्त की रचना की। इसका भावार्थ यह है कि) काँगड़ा के लोग यह वार्तालाप करने लगे। हमने तभी जान लिया था जब इन्होंने (कांगड़ापति ने) गुआलों की मति करके चंव्याल (चंपापति) का पठियार देश छीना था। जमुआलों की फौज इसी कारण बिना नाव भारी नदी (रावी) लाँघकर माछीभैाण पहुँच गई है। आजकल गुलेरिए (गुलेर राज्य के पति) भी उनसे मिल जायँगे और डडुहालों (डाडा देश के स्वामी) से भी उनकी चाल हो जायगी। सवैए (सीवा देश के स्वामी) जोर पाकर इनसे मिल जायँगे। केवल जसुआलों (जसुआँ के राजाओं) की क्या बन आएगी।

सवैया

राज के ताल में दूत पठाइके संधी कियो लियो देश बचाई।
श्री बृजराजहु सो मिलवे को उलेर करी न गुलेर के साईं॥
यों सुनि कांगड़ा देश नरेश के आनन आन परी पियराई।
कूच कियो खवली थल तें पुनि ठाढ़े भए हैं नदौन में आई॥ १५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
कृपया इस ग्रन्थको निम्नांकित तिथि पर या उसके पूर्व

भावार्थ—राजा के ताल में दूत भेजकर गुलेर राज्य के स्वामी ने वृजराजदेव से संधि कर ली और अपने देश को बचा लिया। जरा भी देर न की। ऐसा समाचार सुनकर काँगड़ापति के दिल में भागने की सूझी और वह खवलोथल (एक स्थान) से कूच कर नादौन में पहुँच गया।

दोहा—एक दिवस डेरे किए हरीपुर में वृजराज।
मीत जानि अनुकूल ह्वै पूर्ण लाज जहाज ॥ १६ ॥

भावार्थ—एक दिन वृजराजदेव ने राजा गुलेर को मित्र जानकर हरीपुर नगर (राज्यभवन) में मुकाम किया।

सवैया

छोरयो दत्त गुलेर को देश तबै कछहद कटोच की आई।
लूटिबे को चहुँ ओर तबै करि शोर पठान की छूट पठाई ॥
देखि परे दस ही दिस धूम ही आग दवान लग्यो छबि छाई।
श्री वृजराज प्रचंड प्रताप तें या गत ठौर लहैं न लुगाई ॥ १७ ॥

भावार्थ—गुलेर का देश छोड़कर जब कटोच (कांगड़ापति) की सीमा आई तब वृजराजदेव ने चारों ओर लूट-मार के लिये पठानों की फौज भेज दी। सब दिशाओं में धुंधकार छा गया, मानो वृजराजदेव के प्रचंड प्रताप से लोग भाग निकले।

सोरठा—राजसिंह महाराज साईं प्रबल पहाड़ को।
दौरी निज बल साज आइ मिल्यो जमुआल को ॥ १८ ॥

भावार्थ—राजा रायसिंह पर्वतपति (चंब्याल) अपना दल लेकर वृजराजदेव से आ मिला।

दोहा—लूट जारि वा देश को गए बियासा तीर।
तुरत जाइ गाहन कियो कान्हसिंह धरि धीर ॥ १९ ॥

भावार्थ—उस देश को लूट और जलाकर व्यास नदी के तीर पहुँचकर नदी को लाँघा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरुषार्थ ...	१।)	रोम का इति
तर्कशास्त्र भाग १, २, ३	३।।।)	रसखान और
प्राचीन आर्यवीरता ...	१।)	मानस सरोवर

सूर्यकुमारी-पुस्तकमाला

ज्ञानयोग खंड १-२ ...	४)	पाश्चात्य दर्श
करुणा ...	३।।)	हिंदू राज्यतंत्र
शशांक ...	३)	कर्मवाद और
मुद्राशास्त्र ...	२।।)	हिंदी-साहित्य
अकबरी दरबार		हिंदी रसगंगा
भाग १-२ ...	६)	हिंदी की गद्य

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक

चीनी यात्री फाहियान ...	१), १।)	प्राचीन मुद्रा
चीनी यात्री सुंगयुन ...	१)	मुँहणोत नैण
सुलेमान सौदागर ...	१।)	मौर्य्यकालीन
अशोक की धर्मलिपियाँ ...	३)	मआसिरुल
हुमायूँनामा ...	१।।)	बुंदेलखंड का

बालाबख्श राजपूत चारण पुस

बाँकीदास ग्रंथावली भाग १-२	१)	ब्रजनिधि ग्रंथ
बीसलदेव रासो ...	।।।)	ढोला मारूरा
शिखर वंशोत्पत्ति ...	।।।)	

अन्य उपयोगी पुस्तकें

भक्तनामावली ...	।।=)	खुसरो की हि
चंद्रावती या नासिकेतोपाख्यान	।)	प्रेमसागर
सुजान चरित ...	२)	दोहावली
पृथ्वीराज रासो ...	१०)	गीतावली
हम्मीर हठ ...	।।)	कवितावली
हम्मीर रासो ...	१।।)	जायसी-ग्रंथा
चित्रावली ...	२)	तुलसी-ग्रंथाव
परमाल रासो	२)	कबीर-ग्रंथाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi